16738

बैदेहीवल्लभोविजयतेतराम् ❀

अनन्तश्रीसर्वेश्वरि

श्रीचारुशीलास्तोत्रम्

(भाषाटीकासमेतम्)

प्रकाशक:—

महान्त श्रीसियाशरणजी महाराज

श्रीबैदेहीवल्लभकुञ्ज (श्रीबाबनजीमहाराज का मन्दिर)

स्वर्गद्वार, अयोध्या।

मुद्रक:—

'साहित्यालङ्कार' पं० ब्रह्मदेवमिश्र शास्त्री व्या० सा०

आचार्य्य, रमेश आर्टप्रेस, अयोध्या।

१९४५ ई०]　　[मूल्य केवल प्रेम

श्रीवैदेहीवल्लभोविजयतेतराम ।

अनन्तश्रीसर्वेश्वरि

श्रीचारुशीलास्तोत्रम्

भाषाटीकासमेतम् ।

टीकाकार—

सकल शास्त्र निष्णात विद्वद्वर अनन्त श्री पण्डित

रामवल्लभाशरणजी महाराज ।

प्रकाशक:—

श्रीरसिकाधिराज रसानन्य श्रीमहान्त श्रीस्वामी जनक-

दुलारीशरणजू महाराज (श्रीबावनजू)

के कृपापात्र

महान्त श्रीसियाशरणजी महाराज

श्रीवैदेहीवल्लभकुञ्ज (श्रीबावनजी महाराज का मन्दिर)

स्वर्गद्वार, अयोध्या ।

16738

विषयसूची

संख्या	विषय	पृष्ठसंख्या
१	भूमिका	१
२	प्रस्तावना	२
३	प्रकाशक को धन्यवाद	४
४	भूमिका-विवरण	५
५	मंत्रराज की परंपरा	६
६	उपासना का भेद	८
७	श्रीहनुमंतलालजी का आचार्य्यत्वप्रतिपादन	९
८	श्रीचारुशीलाजू का आचार्य्यत्व प्रतिपादन	९
९	श्रीचारुशीलाजू और हनुमन्तलालजूकीअभिन्नताप्रतिपादन	१०
१०	श्रीचारुशीलाजी को सर्वेश्वरित्व निरूपण	१३
११	श्रीप्रशादाजी और श्रीचारुशीलाजीका अभिन्नताप्रतिपादन	२०
१२	श्रीसर्वेश्वरी चारुशीलाजी की पूजाविधि	
१३	श्रीसर्वेश्वरी श्रीचारुशीला व्रतजन्मोत्सव	

श्रीअनन्त श्रीहनुमन्तलालजू

श्री जानकी वल्लभो विजयतेतराम्

श्री साकेतवासी श्री १००८ श्री अनन्त स्वामी जनकदुलारी शरण
(श्री बावन जू) महाराज अयोध्या जी

श्रीजानकीवल्लभो विजयतेतराम

अथ भूमिका प्रारम्भः

अनंतश्रीसर्वेश्वरिश्रीचारुशीलायैनमः श्रीमतेहनुमतेनमः
श्रीमतेरामानन्दाचार्य्यायनमः श्रीमतेअग्रदेवाचार्य्यायनमः
श्रीमते दीनबन्धवेनमः श्रीमतेकरूणासिन्धवेनमः
श्रीमत्यै रसिक अल्यैनमः श्रीसद्गुरू चरण कमलेभ्योनमः

निःसीम करुणा वरुणालय जगन्नियन्ता भगवान् को कोटिशः धन्यवाद है जिनकी कृपासे सर्वशक्ति शिरोमणि भूता श्रीमिथिलेशनंदनीजू की अनंत सखियों में तथा अष्टयूथेश्वरियों में सर्व प्रधान श्रीसर्वेश्वरी श्रीचारुशीलाजू का जन्म चरित्र पूजन स्तव आदिभाषा में संक्षिप्त रूप से अनुवाद होकर तैयार हो चुका है सहृदय सज्जनों को विदित हो कि यह यूथेश्वरियों का प्रादुर्भाव समय उनके मातापिता आदिके नामों कावर्णन अन्य ग्रन्थों में भी मिलता है जैसे कि सारस्वत संहिता शांडिल्य और पुलस्त्य, पुलह आदि संहितावों में मिलता है परंच यह श्रीअग-स्त्यसंहिता के चालीसवें अध्याय में तथा पंचरात्रान्तर्गत बृहद् ब्रह्म संहिता और बृहद् ब्रह्मरामायण में श्रीमहा लक्ष्मी कृतस्तोत्र मिलरहा है प्रमाण अन्वेषीसज्जनों को यह विदित हो कि जहाँ प्रमाणों का मुख्यतया उल्लेख किया गया है वहाँ पर ऋग यजुः सामा थर्वाच भारतं पंचरात्रकम् इत्यादि वचनों से तथा पंचरात्र स्यकृत्स्नस्य कर्ता नारायणः स्वयम् पुराणों में भी "सात्व तां तंत्र माचष्टे नैष्कर्म्यं कर्मणां यतः" इत्यादिशतस

वाक्यों से पंचरात्र अति प्रामाणिक ग्रन्थों में एक प्रधानरूप से माना जाता है यहभी ज्ञातरहै कि पंचरात्र का दोविभाग है एक नारद पंचरात्र दूसरा कपिल पंचरात्र आज कल हमारी अनवधानता के कारण इन ग्रंथों की अनुपलब्धि सी हो रही है कहीं थोड़े थोड़ेभागों में ग्रंथमिल रहे हैं भगवान् की एकपाद्विभूति की मर्य्यादा ही ऐसी है कि जिससे संसार में सब का परिणाम होता रहता है एक समय वह था जबकि इन उपासनावों के ग्रंथों का पठन पाठन प्रधान रूप से था आज वह समय है जब हम कभी ऐसे ग्रंथों को पाते हैं तब यही कल्पना उठने लगती है कि यह नवीन किसी प्रेमी की कल्पना है जब निःसीम करुणा कर भगवान् दया करें, हमारे हृदय को सात्विक बनावें तब इन कुतर्कों से पार होकर अपना सर्वस्व भूतनिः श्रेयस्कर इस रस मय भावों की प्रमाणयता, सत्यताहृदय में उदय हो और आदर की दृष्टि से इन ग्रंथों को हम देखैं और उन में अपने कल्याण कामार्ग पाकर संसार से विमुख होकर आनंद रूप भगवान् में प्रेम करें और मानव जन्म की सफलता को प्राप्त करैं कतिपय महानुभावों की कृपा तथा प्रेरणा से हमें यह सुअवसर मिला है जिससे इन ग्रंथों का कुछ अनुवाद किया है आशा है प्रेमी भावुक महात्माओं को इससे परमाह्लाद होगा।

पं० रामवल्लभाशरण

मधुकर निवास
श्रीजानकीघाट
ता: ११।८।४१ ई०

अनंतश्रीवैदेहीवल्लभोविजयतेतराम

सर्वेश्वरि श्रीचारुशीलायैनमः

श्रीमतेहनुमतेनमः

अनंत श्री सद्गुरू श्रीचरणकमलेभ्योनमः

प्रास्तावना

भूमिकाबिवरणबनानेका प्रधानहेतु श्री १०८ विद्वद्वर सन्त शिरोमणि आचार्य्यनिष्ठ श्री पण्डित अखिलेश्वरदासजी महाराजने बड़े उत्साह के साथ कहा कि हम श्रीसर्वेश्वरी श्रीचारुशीलाजी को स्तव तथा पूजनविधि इत्यदि का भलीभांति संशोधन करेंगे और जो प्रूफ प्रेस से निकलेगा उसको अन्तिम प्रूफ को हम स्वयं संसोधन करेगें आपलोग छपवाइये एवं ठीकआपनेवैसाही किया तथा हमको बड़े आह्लाद के साथ आपने आज्ञा दी कि आप एक भूमिका बिवरण कुछ विस्तृतरूपमें लिखें। हमने उसको शिरोधार्य्य किया और यह भी आशिषा आज्ञा दी कि वह विवेचन संप्रदाय के मान्य ग्रंथों के प्रमाणसे प्रमाणित रहै क्योंकि जो प्रमाण से प्रमाणित होता है वही सर्व मान्य होताहै और हम उस भूमिका को देखेंगे एवं भलीभांति देख सुनकर आज्ञा देंगे तब छपेगा, हमने वैसाही किया आपको दिखासुनाकर और आज्ञालेकर प्रेसमें दिया आपकी इस अनुपमश्रद्धा व निष्ठा की प्रशंसा करने के लिए कोई शब्द नहीं है जिससे उसकी उपमा दें। आपको मुख ने जो भी धन्यवाद दियाजाय सब थोड़ा है । इस ग्रन्थका तिलक और

भूमिका अनंत श्रीनिखिल शास्त्र निष्णात संतशिरोमणि रसिकाधिराज श्री १००८ श्रीस्वामि पंडित रामबल्लभाशरणजी महाराज ने अनंत श्रीयुगल सरकार की असीम कृपा से प्रथम ही लिखी थी आपके तिलक और भूमिका की प्रशंसा कोई एकमुख से क्या कर सकता है ? जैसे आपके सवचरित्र अकथनीय हैं वैसे यह कृत्यभी अकथनीय है यह श्रीपंडितजी महाराज का कृत्य कई एक स्थानों में बहुत दिनों से रखा हुआ था श्रीस्वामिनीजू की निःसीम कृपा से अनंत श्रीस्वामी मिथिलाधिपनंदिनीबल्लभशरणजी (श्रीकामद-लताजु) उन के कृपापात्र अनंत श्रीस्वामी युगलशरणजी (कृपावतिजू) उनके कृपापात्र अनंत श्रीस्वामी जनकदुलारीशरणजी अलीबिहारीणीजू (श्रीबाबनजू महाराज) उन के लघुभ्राता श्रीराममनोहर शरणजी (श्रीशुभशीलाजी) तिन श्रीबावनजूमहाराज के परमकृपापात्र श्रद्धेय आचार्य्य निष्ठ परम उदार श्रीसियाशरण जी महाराज स्वर्गद्वार वैदेहीबल्लभकुञ्ज निवासीने इस श्रीसर्वेश्वरी श्रीचारुशीलाजी के स्तव को अपने निजद्रव्य और परिश्रम से छपवाकर प्रकाशित किया है इसलिये आपको सहस्रशः धन्यवाद है और श्रीयुगल सरकार से सविनय यही प्रार्थना है कि आप कृपा कर श्रीप्रकाशक महोदय श्रीसियाशरणजी महाराज के हृदय में ऐसेही उत्साह वढाया करें जिसमें और भी श्रीसांप्रदायिकग्रन्थों का प्रकाशन हुआ करे।

श्रीजानकीघाट चारुशीलाबाग निवासी रसिक शिरोमणि महात्मा श्रीअवध शरणजी महाराज इस पूजन तथा स्तव के छपने में बहुत सहयोग तथा प्रोत्साहन दिये हैं एतावता आपका अनेकानेक धन्यवाद है।

भूमिका-बिवरण

श्रीस्वामिनीजू की कृपा से अनंत श्रीपंडितजी महाराज के केवल एकसूत्र की ब्याख्या अपनी अल्पमति के अनुसार करते हैं चौपाई--छमिहहिंसज्जन मोर ढिठाई सुनिहहिं बालबचनमनलाई

अल्पाक्षरमसंदिग्धं सारवद्विश्वतोमुखम् ।
स्तोभनमनवद्यञ्च सूत्रं सूत्रबिदोविदुः ॥

अर्थात् अक्षर थोड़ाहो और उसका अर्थ बहुतहो उसको सूत्र कहते हैं श्रीपण्डितजी महराज का बहसूत्र यह है कि--**सर्वशक्तिशिरोमणिभूता श्रीमिथिलेशनन्दनीजू की अनंत सखियों में तथा अष्टयूथेश्वरियों में सर्वप्रधान श्रीसर्वेश्वरी श्रीचारुशीलाजी हैं** यह सूत्र श्रीपंडितजी महराज की भूमिका में वर्तमान है केवल इसी का बिबरणभूमिका विवरणमें है सूत्र की व्याख्या सूत्र के आभ्यन्तर मानी जाती है इसलिये यह भूमिका विवरण भी श्रीपंडितजी महाराज की भूमिका के आभ्यन्तर ही है श्रीसंप्रदाय के अर्थात् श्रीरामानन्दीय समस्त वैष्णव मात्रके श्रीहनुमंतलालजी सर्वप्रथम परमाचार्य्य हैं क्योंकि प्रथम प्रथम अनंत श्रीमंत्रराज की प्राप्ति अनंत श्रीकरुणामयी जगन्नियंत्री श्रीसीता महारानीजू से आपको हुई है उसकेवाद ही परंपरागत महानुभाव सबआचार्योंको प्राप्ति हुई है श्रियःश्रीरपि लोकानां दुःखो-

द्धरण हेतवे । हनूमते ददौ मंत्रं सदा रामांघ्रिसेविने ॥
ततस्तु ब्रह्मणा प्राप्तो मुह्यमानेन मायया।

भावार्थः— समस्तलोकों की श्री की श्री सीतामहारानी जी संसार के जीवों के उद्धार के लिए अपने तथा भगवान् सर्वेश श्रीरामभद्र जू के परम प्रिय सेवक श्रीहनुमन्त लाल को श्रीमन्त्रराज को प्रदान किए। और उनसे श्रीब्रह्माजी प्राप्त किए। श्रीब्रह्मा जी से श्रीवशिष्ठ आदि आचार्यों ने मंत्रराज को प्राप्त किया।

पुनरपिमहासदाशिवसंहितायाम्

आद्याचार्य्यं हनूमन्तं त्यक्त्वाह्यन्यमुपासते ।
क्लिश्यन्ति चैव ते मुग्धा मूलहा पल्लवाश्रिताः ।
श्रीमैथिल्याश्च मंत्रं हि श्रीगुरुं मारुतं महत् ।
सखीभावं दंपतीष्टं भुक्ति मुक्ति प्रदंसदा ॥
श्रीजानकी संप्रदायं रामरासमनन्यताम् ।
ऋते केपि न यास्यन्ति वांछितम्फलमेव च ॥
श्रीरामस्यायुधौ तप्तौ जानकी मुद्रिकां विना ।
पारमेष्ठ्यन्न प्राप्नोति ज्ञानादिसाधनैरपि ॥

नोट—यह श्लोक श्रीरामनवरत्न के पंचमरत्न में भीछपा है ।

प्रथम आचार्य्य श्रीहनुमानजी को छोड़कर जो अन्य उपासना करते हैं वे मुग्ध मूल को छेदन कर पल्लवाश्रित हुए वही शयाने हैं

मैथिलीजी के सहित श्रीरामजी का मंत्र श्रीहनुमानजी को महान् गुरु तथा श्रीसीतारामजी की प्रियसखी यह भाव सदा भुक्ति मुक्ति देनेवाला है। श्रीजानकीरूपा श्रीसम्प्रदाय श्रीरामजीकी अनन्यता इस के विना कोई भी वांछित फल कोनहिपा सकते हैं तप्त श्रीरामायुध तथा श्रीजानकी मुद्रिका के विना ज्ञानादिसाधनों से भीपारमेष्ठ्यपद को नहीं पासकते हैं। इससे आप सर्व प्रथमाचार्य्य हैं यह सर्ब सिद्धान्तसिद्ध है तथा विचारदृष्टि से भीदेखा जायतो जीवमात्र के श्रीहनुमन्तलालजू परमाचार्य्य हैं क्योंकि वैष्णव शाक्त सौर्य्य गाणपत्य आदि समस्त मतानुययियों को पारस्परिक सिद्धान्त भेद होतेहुयेभी श्रीहनुमंतलालजू सबके मान्य पूज्य तथा स्मरणीय हैं यह प्रत्यक्ष देखा जाता है और आजतक श्रीसीतारामजू की प्राप्ति सब को आपही के द्वारा हुई है यह बात भी प्रसिद्ध है तथा सिद्धियों के लियेभी आपही की उपासना प्रायः जगत करता है।

एवं श्रीरामानन्दीय वैष्णव समाज को तो कहना ही क्या है उनके तो आप सर्वस्व हैं ही आप श्रीयुगलसरकार श्रीसीताराम जू के प्राण सम प्रिय हैं क्योंकि श्रीमानसरामायण में सरकार स्वयं कहते हैं कि—'तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना' और श्रीमद्वाल्मिकीय उत्तरकांड ३५ सर्ग में सरकार ने स्वयं अपने मुख से श्री अगस्तजी से प्रशंसा की है—

नकालस्य न शक्रस्य न विष्णो र्वित्तपस्यच ।
कर्माणि तानि श्रूयंते यानि युद्धे हनूमतः ॥८॥
एतस्य वाहु वीर्य्येण लंका सीताच लक्ष्मणः ।
प्राप्ता मया जयश्चैव राज्यं मित्राणि वान्धवाः ॥९॥

अर्थात् श्रीहनुमंतलालजू का पराक्रम काल इन्द्र श्रीविष्णु कुवेर सबसे बढ़ा चढ़ा है क्योंकि श्रीहनुमान्‌जी जैसा पराक्रम युद्ध में किये है वैसा पराक्रम उनलोगोंमें सुनने में भी नहीं आता है। त्रिदेवों में सबसे प्रधान श्रीविष्णु भगवान् हैं जब उनका ही पराक्रम श्रीहनुमंतलालजू के बराबर नहीं हैं तो और देवों को कहना ही क्या है अर्थात श्रीहनुमन्तलालजू सब देवों में श्रेष्ठ हैं। उपासना दो प्रकार की है एक आभ्यन्तर एक वाह्य। यह अनन्त श्रीकरुणासिंधुजी के अष्टयाम में लिखा है—वरणौं वाह्यान्तर सियरघुवर सेवकाई। वाह्य जो अर्चा विग्रह हैं उनका पूजन वाह्य सेवा है और मनोमयी मूर्ति का मन से ध्यान पूर्वक पूजन करना आभ्यन्तर सेवा है। 'आमछांहतर मानसपूजा' और पंचरसाभक्ति है तिसमें शृङ्गाररस रसराज माना गया है शांडिल्यसंहितायां—रस शब्दस्तु शृङ्गारे मुख्य वृत्ति तया स्थितः। अर्थात् रस शब्द की मुख्य वृत्ति शृङ्गार ही में है और शृङ्गाररस में आभ्यंतर सखि-भावना मानी जाती है। प्रमाण श्रीमन्नारायण भगवान का वचन श्रीलक्ष्मीजी के प्रति बृहत्ब्रह्मसहिता द्वितीयपाद पंचम अध्याय श्लोक २५।

अचिरादेव दास्यामि वाञ्छितंकमलालये
वहिरेव मथोमध्ये सखीभावेनभावयेत् ॥

अर्थात् वाह्य में पञ्चसंस्कारयुक्त भजन करे और आभ्यंतर में सखीभाव से भावना करे। जैसे वाह्याचार्य्य सबके श्रीहनुमंत लालजू हैं उसी तरह आभ्यन्तराचार्य्य श्रीचारुशीलाजू हैं इसका प्रमाण यह है कि श्रीचारुशीलाजी के दो विग्रह हैं एक आभ्यतर एक वाह्य प्रमाण श्रीहनुमत्संहिता अ० १ श्रीअगस्तजू का वचन श्रीहनुमन्तलालजू के प्रति।

तत्सर्वं श्रोतु मिच्छामि विस्तारेण तवाननात्।
त्वं साक्षाच्चारुशीलाच नित्या मध्ये प्रपूजिता ॥८॥
इति श्रुतं मया सर्वं तेनत्वां प्रणमाम्यहम्।
यद्यस्तिते कृपा मह्यं गुह्यं तद्वद सांप्रतम् ॥६॥

अर्थ—श्रीअगस्तजी बोले कि हे श्रीहनुमन्तलालजु हम विस्तार पूर्वक आपके मुख से श्रीसीतारामजू के रहस्य का सुनना चाहते हैं क्योंकि आप साक्षात् श्रीचारुशीलाजू हैं और नित्या हैं, (मध्ये प्रपूजिता) अर्थात्त सब यूथेश्वरियों के मध्यमें प्रकर्षणपूजिता एवञ्च सब युथेश्वरिवर्ग आपका अत्यन्त प्रेम से पूजती हैं क्योंकि आप प्रधानभूता सर्वेश्वरियों में अग्रगण्या हैं इस बात को हम सब जगह सुनते हैं अर्थात सब देवता महर्षि ऋषिवर्ग कहते हैं इसलिए हम आपके चरणों में प्रणाम करते हैं यदि हमारे ऊपर

आपकी कृपा हो तो इस गुह्य रहस्य को कृपया सुनाइए। इससे यह स्पष्ट है कि श्रीहनुमन्तलालजी ही आभ्यन्तरसेबार्थ श्रीचारु-शीलाजी हैं और यह भी स्पष्टहुआ कि जैसे बाह्योपासक श्रीरामा-नन्दीयवैष्णव सम्प्रदाय के आचार्य्य श्रीहनुमन्तलालजू हैं यह निर्विवाद सिद्ध है उसी तरह आभ्यन्तरीय उपासना में श्रीरामा-नन्दीय बैष्णव सम्प्रदाय मात्र के श्रीचारुशीलाजू सर्व प्रथम परम-रसाचार्य्य हैं यह प्रसिद्ध है।

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणमें भी यही सिद्ध होता है कि श्री श्री चारुशीला जू और श्री हनुमन्त लाल जू अभिन्न हैं उत्तर काण्ड ४० सर्ग में——

तवैतच्चरितं दिव्यं कथांच रघुनन्दन।
तन्ममाप्सरसोराम श्रावयेयुर्नरर्षभ॥

अर्थ—आपके चरित्र को और कथा को हे श्रीरामभद्रजू हमको अप्सरायें नित्य सुनाया करें। इसमें तीन विषय विचार-णीय हैं। कथा, चरित्र, और अप्सरायें सुनाया करें, कथा और चरित्र एक ही बात है दोनों शब्दों को महर्षि जी ने क्यों लिखा? इसका स्पष्ट तात्पर्य्य निकलता है कि कथा से नित्य नैमित्तिक कर्म, धर्म, वर्णव्यवस्था, धर्म, संस्थापन लोकरक्षा इत्यादि का वर्णन करना है कथा और चरित्र से यहां लिया जायगा अंतरंग रहस्य, रासोल्लास लीला इत्यादि क्योंकि यदि ऐसा न होता तो

अप्सरायें सुनाया करें ऐसा श्रीहनुमंतलालजू नहीं कहते इस वाक्य से तथा श्रीसुन्दरकाण्ड वाल्मीकीय में जैसे जिन गोप्य अंगों का वर्णन श्रीहनुमंतलालजू ने श्रीकिशोरीजू से किया है वैसा वर्णन बाह्योपासक से हो ही नहीं सकता है माता के सामने श्रीस्वामिनी जू भी अपने प्रियतम के संग की जो जो अंतरंग बातें कही हैं वे भी बिना अन्तरंग ज्ञाता के नहीं कह सकती इससे भी स्पष्ट विदित होता है कि श्रीहनुमंतलालजू के श्रीचारुशीलाजू द्वितीय विग्रह हैं। और श्रीस्वामिनीजू को श्रीहनुमंतलालजू अत्यंतप्रिय हैं। क्योंकि श्रीराज्याभिषेक के समय सभा के मध्य में श्रीस्वामिनी जी अपने गले से हार उतारीं और श्रीप्रीतमजू के तरफ हेरीं श्रीप्रीतमजू आंतरिक भावों को जानकर कहे कि हे श्रीप्रियाजू आपको जो सबसे प्रिय हो उसे इस हार को दे दें तब आप श्री हनुमंतलालजी को दिये इससे स्पष्ट हैं कि श्रीस्वामिनीजू के आप अत्यन्त कृपापात्र हैं क्यों न हों श्रीस्वामिनीजी का जो प्रधानतम शीलगुण है वही साक्षात श्रीचारुशीलारूप से प्रगट हुई है उनके आप साक्षात् द्वितीय विग्रह हैं। एवं श्रीयुगलसरकार के जो अनन्त कल्याण गुण हैं उनमें शीलगुण प्रधानतम गुण है यद्यपि श्रीयुगल सरकार का शरणागत पालन निज धर्म माना गया है तथापि स्मरण रखना चाहिए कि निःशील में यह शरणागत पालन, भक्त-वत्सल, सौहार्द, दयालुता इत्यादि गुण रहही नहीं सकते हैं ये सब गुणशीलवान में ही रहते हैं श्रीयुगलसरकार शीलसिन्धु हैं। श्री युगलसरकार के जो शील गुण है वही साक्षात श्रीचारुशीलारूप

में प्रगट भया है क्योंकि आपका नाम ही है श्रीचारुशीला। यह एक प्रधान नियम है कि केवल नाम से जो श्रेष्ठता प्रकट होती है वह अकाट्य होती है जैसे—श्रीसीतारामजी यह आपका नाम है सो केवल नाम के ही अर्थ से श्रीयुगलसरकार की अकाट्य परात्परता प्रगट हो जाती है और तो अनन्त प्रमाण हैं ही उसी तरह आपका नाम है श्रीचारुशीलाजी स्पष्ट अर्थ है कि चारु, सुन्दर, रमणीक शील है जिनका वे हुईं श्री चारुशीला जी। शील गुण की प्रधानता होने से आप सबसे प्रधानभूता श्रीसर्वेश्वरीजी कही जाती हैं। जन्मस्थान से भी प्रधानता मानी जाती है श्री मिथिलेश शीरध्वजजी महाराज के द्वितीय माता से अष्ट भ्राता हुए उनमें सब से ज्येष्ठ श्रीशत्रुजितजी महराज रहे और आपके सातलघुभ्राता रहे तो सबसे ज्येष्ठ श्रीशत्रुजित महराज की आप ज्येष्ठ कन्या है इससे भी आप प्रधानभूता हैं। किसीकी प्रधानता होनेमें चारवस्तु की आवश्यकता होती है अर्थात चार वस्तु जिसमें हो वह श्रेष्ट माना जाता है।

यथाचतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते—निघर्षण च्छेदन तापताडनै स्तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते श्रुतेन शीलेन गुणेन कर्मणा।

जैसेचार प्रकारसे सोनाकीपरीक्षाहोती है घसनेसे छेदने, से तपाने और ताड़न करनेसे अर्थात् चारपरीक्षा में पास हुवा तो

उत्तमसुवर्ण मानाजाता है तीसी तरह जिसमेंश्रुतअर्थात् जिन कि प्रशंशा सर्बत्रसुनीजाय और शील औ गुण तथा सुन्दरकर्म हों वही प्रशंसनीयहोता है श्रीचारुशीलाजूमें चारोंहु वस्तु पूर्णरूप में हैं जैसे श्रुतपिछे भूमिकामे लिखागया है देखिये—

इति श्रुतं मयासर्वंतेनत्वां प्रणमाम्यहम्—

और शीलको क्या कहना है आपका नामही श्रीचारुशीला जू है गुणकर्मकावर्णन इस स्तोत्रमें है देखिये और श्रीचारुशीलाजू के श्रेष्टतमा प्रधानमूत्राहोने में प्रमाण श्रीहनुमत्सहिंताअध्याय ५।

श्लोकः

सर्वेषामवताराणामवतारी रघुत्तमः
श्रुतंदृष्टं मयासर्वं चिराय जीवनान्मुने ॥७८॥
ब्रह्म विष्णु महेशाद्याः संत्यन्ये चिरजीविनः
सर्वेपि विभवासक्ता यतोहं बिभवात्परः ॥७९॥
माधुर्ये च वयस्याह मैश्वर्य्ये हनुमान्कपिः

अर्थ—हेमुने सम्पूर्ण अवतारोंके अवतारी श्रीरामचन्द्रजूहैं क्योंकि हम चिरजीवीहैं इसलिये इनसब वातों को सुने तथा देखे हैं ७८ श्रीब्रह्माविष्णुमहेशादि और भी जो चिरजीवीहैं वेसवविभव है हमसव विभवोंसे परे हैं ७९— माधुर्य मे अर्थात् अंतरंगमें हम वयस्या अर्थात श्रीचारुशीलाजी हैं और ऐश्वर्य्य अर्थात् बाह्यमें

श्रीहनुमंतलालजू हैं इससेहम आपसे रासोल्लास वर्णन किये हैं इसमे ज्यादा लिखने की कोई आवश्यकता नही है केवलइस श्लोक से ही श्रीचारुशीलाजी कापरत्व पाठक समझले—यही चारोंवस्तु आप के बाह्यविग्रहजो श्रीहनुमंतलालजू हैं उनमेभी पूर्णरूप से है यहां तक कि श्रीलवकुशजी वर्णन किये है कि

"रामायण महामालारत्नं वंदेऽनिलात्मजं

अर्थात् समस्त श्रीमद्वाल्मिकी रामयण माला है और श्रीहनुमंत लालजी उसमालाके रत्न यानेसुमेरुहैं अब इससे बढकर कोई क्याकहेगा और लिखेगा जैसे परात्पर ब्रह्म श्रीराम भद्रजू जब अवतार लेते हैं तब श्रीदशरथनन्दन श्रीकौशल्या नदंन कहलाते हैं

परंच उनके परात्परतामें कोइ फर्क नही पड़ताहैं क्योकि जवत्रिपाद विभूति से एक पाद वि भूतिमें अवतार लेगेंतो अवश्य कोई मातापिता होगा ही इसीतरह श्रीहनुमन्तलालजू भी श्रीवायु नन्दन अंजनानन्दन इत्यादि विशेषण से कहे जाते हैं। परंच आप हैं दिव्य नित्य अप्राकृत क्योंकि सुन्दरकांड सर्ग ३६ श्लो: ९ में स्वयं श्रीस्वामिनीजू कही हैं कि

नहि त्वां प्राकृतं मन्ये वानरं वानरर्षभ ।
यस्यते नास्ति संत्रासो रावणादपिसंभ्रमः ९ ॥
अर्हसे च कपिश्रेष्ठ मया समभिभाषितुम्।

यद्यसि प्रेषितस्तेन रामेण विदितात्मना ॥१०॥
प्रेषयिष्यति दुर्धर्षो रामो न ह्यपरीक्षितम् ।
पराक्रममविज्ञाय मत्सकाशं विशेषतः ॥

अर्थ—हे वानरर्षभ आपको मैं प्राकृत नहीं समझती हूँ आप दिव्य हैं क्योंकि जिस रावण से त्रैलोक्य कांपता है विष्णु भगवान् का चक्र भी जिसको कुछ नहीं किया उससे न आपको कोई भ्रम है न त्रास है। एतावता आप दिव्य हैं। क्योंकि श्रीराम जी सबकी आत्मा को जानते हैं इसलिए बिना बलपराक्रम की परीक्षा किए अर्थात् बिना जाने हमारे पास आपको नहीं भेजते इसलिए हमसे आप वार्ता करने योग्य हैं।

इसी सुन्दरकांड में श्रीहनुमंतलालजू कहते हैं कि हेस्वामिनीजू हम कामरूपी हैं बा० रा० सु० सर्ग ३५ श्लोक ७६।

मयेयमसहायेन चरता कामरूपिणा।

अर्थ—श्रीयुगलसरकारकी कृपासे बिना किसीकी सहायता के जहां चाहें चलेजांय क्योंकि हम कामरूपी हैं यहभी कहे हैं कि हे श्रीस्वामिनीजू हमको आप जानती हैं और जानकर हमसे आप पूछती हैं सरकार का वैभव यह हमारे भाग्य की बात है लीजिए हम कहते हैं—सर्ग ३५ श्लो० ६।

जानन्तीबतदिष्ट्यामां वैदेहि परिपृच्छसि।

इसका भाव ऊपर लिखा गया है। विचार करने की बात है कि जब वाह्यविग्रह श्रीहनुमंतलालजी में इतना प्रभाव है जो श्रीस्वामिनीजी तथा सरकार को इतना प्रिय हैं जितना और दूसरा

कोई नहीं है यहां तक कि श्रीयुगलसरकार श्रीभरतजी, लखन-लालजी और श्रीसुग्रीव, अंगदादि बानरसमाज और विभीषणजी ने एक स्वर से यही कहा है कि हे श्रीहनुमंतलालजी हम आपके ऋणी हैं अर्थात् हमलोगों के साथ जो आपने उपकार किया है उसका बदला हमलोग नहीं चुका सकते। जब वाह्यविग्रह श्रीहनु-मंतलालजूमें इतना प्रभाव है तो आभ्यन्तर श्रीचारुशीलाजी के प्रभाव को कोई कैसे लेखा लगा सकता है अर्थात् अगम है। श्रीहनुमंतलालजू श्रीस्वामिनीजू को इतना प्रिय हैं तो श्रीचारुशीला जी कितनी प्रिय होंगी यह अलेख विषय है अर्थात् लेखनी और वाणी से परे है। इसीसे श्रीचारुशीलाजी सर्वश्रेष्ठतमा प्रधानभूता श्रीसर्वेश्वरीजी कही जाती हैं। और भी देखिये श्रीरा-मानन्दीय वैष्णवाचार्य्य अनंत श्रीदीनवन्धुजी (श्रीरामप्रसाद)विर चित धर्मशिक्षापत्री जिसके तिलक श्रीपण्डितवर रामवल्लभाशरणजी महाराज ने किया है उसमें श्रीचारुशीलाजू को सब परिकरों में प्रधान और श्रीयुगलसरकार के अभिन्न विग्रह माने हैं।

चारुशीलादयोभक्तास्तस्यस्युः पार्श्वतः क्वचित्।
क्वचित्तदङ्केऽतिस्नेहात्सतु ज्ञेयस्तदैकलः ॥११७॥

अर्थ—श्रीचारुशीलादिक भक्ता श्रीरामजी के पार्श्वमें स्थित हैं और कभी स्नेह से अंगों में स्थित कभी पृथक जानना चाहिए इसतरह से उसे एक भी कह सकते हैं। अब एक प्रश्न यह होता है कि श्रीयुगलसरकार के ऐकान्तिक स्थानमें अथवा परमैकांतिक रहस्यलीला कैसे बनती है जहां दो दल की आवश्यकता पड़ती है

जैसे होली गेंद जलक्रीडा इत्यादि, क्योंकि दास सखा तो उसस्थान पर पहुँचते नहीं और महल में तो श्रीकिशोरीजी की सखियां रहती हैं क्योंकि नायिका को सखि होती हैं और नायक को सखा तब जहां दो दल की आवश्यकता पड़ती है वहां कैसे काम चलता है ? श्रीस्वामिनीजीकी जितनी सखियां हैं सब नित्या तथा दिव्या हैं और श्रुति तो यह कहती है कि बद्धजीव जब मुक्त हो जाता है तब इतना सामर्थ्य उसमें श्रीयुगलसरकार की कृपासे आजाता है छान्दोग्य—

स एकधाभवति त्रिधाभवति पञ्चधा सप्तधानवधा चैवपुनश्चैकादशः स्मृतः शतश्चदशचैकश्च सहस्राणिच विंशतिः ससत्यसंकल्पोभवति कामचारोभवति इत्यादि अनेकों श्रुतियां हैं ।

अर्थ—मुक्तजीव एक रहता है और तीन पांच सात नव तथा सौ और हजारहा अर्थात एकही जीव हजारों रूपधरलेता है क्योंकि उसके संकल्पमात्रसे सब बातें होजाती हैं तब जोनित्य हैं उनकी शक्तियों का कौनलेखा लगा सकता हैं । यहां तककि एकही परिकर अनेकोरूप से श्रीयुगल सरकार की सेवा करते हैं अर्थात वाहन पलँग बिछौना सिंहासन छत्र चमर इत्यादि, शास्त्रोंमें इसका अनेकों प्रमाण मिलता है और इसीआधार पर आलवन्दार स्तोत्रमें कई श्लोक आये हैं उसमें एक श्लोक श्रीशेषजीकी सेवा का लिखाजाता है

निवासशय्यासनपादुकांशुकोपधान बर्षातप बारणादिभिः
शरीरभैदैस्तव शेषता गतै र्यथोचितं शेषइतीरितो जनैः

अर्थ—शरीर भेद से एकही शेषजी महल शय्या आंसन पादुका पीताम्बरादि वस्त्र तकियाछत्र इत्यादि एकही शरीर से अनेक रूपधारण कर अनेक वस्तु होकर सेवा करते हैं।

यह दिग्दर्शन मात्रकरादिया गया है ऐसे अनेकों प्रामाण श्रुतियों में आये हैं विस्तार भय से नहीं लिखा गया है उसी प्रकार सब सखियां कभी एकरूप से कभी अनेक रूपसे कभी एक झुंडसे कभी दोझुंड होकर के श्रीप्रिया प्रितम को आनन्द जिस में हो वैसी वैसी अनेको लीलायें किया करती हैं क्योंकि सब श्रीयुगल रूप माधुरी में छकी रहती हैं और श्रीप्रीयाप्रीयतमजू के स्वरूप दोहैं परंच परात्पर ब्रह्मतत्वतो एकही है श्रीमानस दोहा—

गिरा अर्थ जल वीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।
वन्दौं सीतारामपद जिनहिं परम प्रिय खिन्न॥

श्रीवाल्मीकीये सरकारकावचन

अनन्याहिमया सीता भास्करेण प्रभायथा

श्रीस्वामिनीजी का बचन

अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभायथा

श्रुतिब्रह्मपरक अथर्व का: १० अनु: ४ मंडल २७—

त्वंस्त्री त्वंपुमानसि त्वंकुमार उतवा कुमारी

अर्थात् एकही परात्परब्रह्म के युगल रूप हैं स्त्रीपुरुष कुमारी

कुमार इत्यादि वह तो अलौकिक तत्व है वहां भेदभाव कैसा ? श्रीगोस्वामीजी लिखते हैं कि

काल कर्म गुण स्वभाव सबके शीसतपत, श्रीरामनाम महिमाकी चरचा चले चपत।

जब नामकी महिमा सुनने से रागद्वेष भेदभाव कालकर्म गुणस्वभाव प्राकृतिक धर्म नहीं रहता है और जहां साक्षातश्रीयुगल सरकार विराज मान है वहां कैसे रहेगा ? इसलिये दोनों सरकार की सेवा में अहर्निश सब सखियां सहेलियां लगी रहती हैं कभी कोई श्रीकिशोरीजूकी सेवामें कभीं कोई सरकार की सेवामें पुनः वही सखियां कभी सरकार कि सेवामें कभी श्रीस्वामिनीजू की सेवामें—

इसी क्रमसे बराबर सेवा किया करती हैं। कुछ दिग्दर्शन मात्र अनंत श्रीमधुराचार्य्य कृत माधुर्य्यकेलिकादम्बिनी से दिखा याजाता है श्रीसुखासन पर विराजमान श्रीयुगलसरकार की सेवा तथा झांकी—

चन्द्रासखी चन्द्रकलातिरम्या रामासखी साविमलापिचक्रुः
क्रमेण चोभे शशिभे सुचामरे रूपानुरक्ताः प्रियरागरक्ताः
छत्रद्वयं मौक्तिक दामयुक्तम् ॥ १७५ ॥

जोआया है वह छत्रकी सेवा किन किन सखियों के श्रीकर कमल में रहा है वह उर्युक्त श्लोकमें देखिये परंच इस बातका ध्यान

रखना चाहिये कि श्लोकमें क्रमेणलिखाहै अर्थ है क्रमसे, अर्थात् हे सखि श्रीचन्द्राजी और रमणीया श्रीचन्द्रकलाजी यह युगल सखी क्रमसे श्रीयुगल सरकार के ऊपर छत्र लगायेहैं याने श्रीचन्द्रा जी श्रीकीशोरीजूके ऊपर छत्रलगाइहैं और श्रीचन्द्रकलाजी सर कार के ऊपर छत्रलगाइहैं और श्रीरमाजी और श्रीविमलाजी क्रमसे श्रीयुगल सरकार के तरफ चन्द्रके सदृश दो चवँर लिये हैं अर्थात श्रीरमाजी श्रीस्वामिनीजी की तरफ और श्रीबिमलाजी सरकार की तरफ—कथंभूता: रूपानुरक्ता: प्रियरागरक्ता अर्थात प्रियकेरूपमाधुरीमें और अनुरागमें अनुरक्त हैं अर्थात् आनन्द मग्न हैं इस श्लोक का भावार्थ यह है कि श्रीचन्द्राजी और श्रीर माजी श्रीस्वामिनीजीकी सेवामें उपस्थित हैं और श्रीचन्द्रकलाजी और विमलाजी सरकार की सेवामें उपस्थित हैं इस भूमिका में पहले लिखागयाहै कि यह कोई नियम नही है कि यह इनकी सखीहै और यह उनकी और यह इनकी सेवा करती हैं और यह उनकी यह सब भेदभाव यहां नही है सब श्रीयुगल सरकार कीहैं और सब श्रीयुगल सरकार की सेवा करती है जहां रूपानुरक्ता: प्रियरागरक्ता:का यह बिशेषण है वहां सेवामें भेदकैसा अब १७६ श्लोक मे श्रीमधुराचार्य्यजी कविका हृदय देखिये।

साश्रीप्रशादा जनकात्मजाया: सखीचरामस्यच चारुशीला—
चक्रेस्म वालव्यजनं विनोदात्सरत्नदण्डं शुभगं सुरम्यम् १६

इस श्लोक के दो विषय द्रष्टव्य हैं एक यह कि एक ही सखी अनेक हो जाती हैं। सेवा समय और दरबार में श्रीसर्वे-

श्वरीजी कौन हैं ? कोई भी दरबार हो दिव्य अथवा प्राकृत एक प्रधानतम का होना तो जरूरी है। दोहा श्रीनेहप्रकाश कृत—

दयादृष्टि सर्वेश्वरी दइ सेवा जो जाहि ।
भरी प्रेम आनन्दरस सखीकरतसो ताहि ॥

और रस ग्रन्थ में पाँच प्रकार की सखियां मानी गई हैं। सखी, नित्यसखी, प्राणसखी, प्रियसखी, और परमश्रेष्ठसखी तो इस लेख के अनुसार दरबार में उनके बैठने का स्थान भी उसी प्रकार का मिलता है अर्थात् परमश्रेष्ठतमा विनोदके साथ अत्यंत समीप में बैठती हैं यह नियम दरबार का है। अब श्लोकार्थ देखिए—इस श्लोक में दो चकार पड़ा है। अन्वय सा श्रीप्रशादा जनकात्मजाया: सखी चपुन: श्रीरामस्य श्रीचारुशीला चपुन: कथंभूता श्रीप्रसादा श्रीचारुशीलाया: द्वितीय विग्रहा एवं-भूता श्रीश्रीप्रसादा श्रीचारुशीला विनोदात अर्थात् हास्यरस विलास परमानन्द पूर्वकात सरत्नदंडं शुभगं सुरम्यं वालव्यजनं लघुह्रस्व व्यजनं चक्रे स्म। अर्थ—श्रीजनकात्मजाजी की सखी श्रीश्रीप्रसादा जी और श्रीरघुनन्दनजू की श्रीचारुशीलाजी यह युगलसखी हास्य रस विलास परमानन्द पूर्वक रत्न जड़ा हुआ सुन्दर रमणीक बाल व्यजन अर्थात् छोटा हलका पंखा अपने करकमलों से विनोद पूर्वक करती हैं काव्यों में जहां विनोद शब्द आता है वहां इसी अर्थ का वाचक होता है। श्रीचारुशीलाजी की अन्तरङ्ग द्वितीय विग्रह श्रीश्रीप्रसादाजी हैं इसमें प्रमाण श्रीकृपानिवासजी अपने ग्रन्थोंमें लिखे हैं कि श्रीचारुशीलाजी और श्रीप्रसादाजी एक ही

हैं इसीसे श्रीकृपानिवासजी अपना सर्व प्रथमाचार्य्य श्रीश्रीप्रसादा जी को मानते हैं और उनके अनुयायीवर्ग भी ऐसा ही मानते हैं और इसी आधार पर श्रीलक्ष्मणकिला वास्तव्य श्रीरसिकाधिराज स्वामी पं० जानकीवरशरणजी महाराज के प्रीतिप्रवाहपदावली में श्रीजनकराजनन्दिनीजू भी जन्मोत्सवबधाई के प्रथम पद में श्री श्रीप्रसादाजी लिखे हैं व श्रीकृपानिवासजी श्रीहनुमन्तलालजू के बधाई के पद में सखीस्वरूप महल नित सेवत युगलभाव अधिकार इससे भी सिद्ध हुआ कि श्रीचारुशीलाजी का ही नाम श्रीश्रीप्रशादा जी हैं और श्रीचारुशीलाजी का ही नाम श्रीपद्माजी भी है यह कौशलखण्डादि ग्रन्थों में नाम मिलता है। अब इन दोनों श्लोकों को ध्यान पूर्वक विचारने से स्पष्टार्थ स्वयं प्रकट हो जाता है किछत्र पीछे से लगाथा जाता है और चँवर दोनों बगल से और बड़ापंखा भी अलग से किया जाता है परंच यहाँ तो बालव्यञ्जन लिखा है तो बालब्यञ्जन अत्यंत समीप में बैठकर किया जाता है और उसमें भी विनोद के साथ लिखा है इससे भी स्पष्ट होगया कि परमश्रेष्ठतमा सर्वप्रधानभूता श्रीसर्वेश्वरी श्रीचारुशीलाजी हैं और वाह्यविग्रह श्रीहनुमंतलालजी भी दरबार में एकदम समीप ही में रहते हैं जैसे श्रीयुगलसरकार का पञ्चायतन जो चित्रपट है उसमें देखिए श्रीयुगलसरकार मध्य में हैं और तीनों भाई आसपास में और श्रीहनुमन्तलालजी एकदम सटे हुए श्रीचरणकमल को स्पर्श किये हैं इससे पाठकगण स्वयं समझ जायेंगे कि दरबार में आ-भ्यन्तर तथा वाह्य में प्रधानता किनकी है और भी श्रीरामस्तव-राज में देखिये ९४ श्लोक में अग्रे वाचयति प्रभञ्जन सुते श्रीहनु-

मंत लालजी को अपपद दिया गया है ऐसे तो श्रीस्वामिनीजी की जितनी श्रीयूथेश्वरियां सखियां सहेलियां हैं वे सभी मान्य हैं पूज्या हैं कल्याणदा हैं और परस्पर में अत्यंतात्यन्त प्रेमाह्लाद से वर्तती हैं क्योंकि सबकी सब श्रीयुगलरसमाधुरीमें निमग्न रहती हैं क्योंकि दिव्या हैं और नित्या दिव्यपरिकर वे हैं एकपाद त्रि-भूति में रहे या त्रिपाद में वह तो दिव्य ही बने रहते हैं उनको प्राकृतिकगुण नहीं स्पर्श करते हैं। गच्छतांस्खलनंध्रुवं इसलोकोक्ति के अनुसार भूल होना मनुष्यका स्वभावही है इसलिये इसविवरण में जो कुछ त्रुटि होगई हो उसके लिये मैं विज्ञजनों से क्षमाप्रार्थी हूँ

मेरो दोष देखो जिन आपनो सुभाव पेखो,
मेरी पीर हरो वेगि अब तो चारुशीला।
जैसेइ स्वभाव शील सियस्वामिनी को,
वैसेहि गुण रावरेइ कहत छबीला॥
रीति पांव हेरन की बड़े करत छोटे तें,
हरत दुख दोष आप सुयश गहीला।
अबना अबेर करो बिनती या चित्तधरो,
मिलावो सिया सों आप हो बसीला॥

श्रीजानकीघाट निवासी रसिकाधिराज संतशिरोमणि परमवैराग्यवानमाधुकरिवृत्तिस्थ अनंत श्रीमधुकर श्रीसीयाशरणजी महाराज के श्रीचरणकमलरजोनुजीवी जानकीवल्लभशरणः।

श्रीचारुशीला स्तोत्रम्

श्री जानकी रसिको बिजयते ।

यूथपा अनन्त सखी सियकी वो लाल ज्यू की,
निरखि जाको रुप रति रमा, उमा, लाजहीं ॥
तिन सब यूथपा की नियन्ता श्रीचारुशीला रुप ।
गुण भरी कनक मन्दिर में राजहीं ॥
गान में प्रवीणा अतिमान हूँ छुटाइवे को ।
जुगल रिझाइवे को सकल रंग साजहीं ॥
ताहिको वसीला करि हेली रस हिये धरि ।
रसिक अली तापे सिये लाल हू निवाजहीं ॥
ग्यान औ विरागजोग जाग, त्याग, तीरथ सों ।
मोसो कछू होत नाहि आलस आभाग सों ॥
भक्ति नवधादि आदि ताहू में प्रवेश नहि ।
शिष्ये हू न आवे विनु मनके अनुराग सों ॥
काम क्रोध लोभ, मोह ये पलीत मीत मरे ।
मिली के फजीहत भये मनके निज लाग सों ॥
आयो हूँ शरण तेरी अब तो श्रीचारुशीले ।
ह्वै के वसीले कीजै सहित सुठि भाग सों ।
और मेरे ठैर नाहि तुहीं चारुशीले ॥
मेरो होउ जू वसीले सियालालसों मिलाइये ।

लाईयो मोकों अति दीन देखि आपनी ॥
समर्थ पेखि कृपा की समुद्र यली कृपामें ।
समाईयो महा लाभ सो कोकहु तुमको न ॥
हानि यामे कीजिये जो भावमे न जग जस छाइये ।
एसीये कृपाल तुम मानो नाही विन तो मेरी ॥
ई आभाग दोष तुम्हों कहा धाइये ॥

जयति चारुशीला चरण शरण मोद भरण पुंज ।
अरूण वरण कमल रज पराग रस भ्रमर गुंज ॥
सुजन हृदय वास करन सकल शोक ताप हरण ।
जनम मरन नमत रूप नवल धार रहन कुंज ॥
श्रीजानकी रमन विहार मिलत कृपाते उदार ।
बिना चारुशीला कृपारसकी रीति नहिं मिलन्जु ॥
श्रीसर्वेश्वरि हमारी स्वामिनि बलिहारि जातु ।
अलि बिहारिना तिहारो कोर कृपाकी करन्जु ॥

देखोर सियपियसंग राजति चारुशीला सुकुमारि ।
शिर अर्द्ध चन्द्र सिंदूर वर बिन्दु छबि भरपूर ॥
लखि रतिमानभयो अलिदूर सारीनीलरंग जरताई ।
झुकि रही चन्द्रिका नीकी मुसक्यान मंद सुख जीकी
हैं प्राणप्रिया प्रिय पियकी मिथीला शत्रुजाति नृपवारी ।
दृगकोर कृपारस भीनि कर नीलपद्म वर लीनी ॥
सर्वेश्वरी अलि सुख दीनो विहरत कनकभवन सुखकारी ।

सियाजू मेरी जीवन प्राण

सियजू मेरी मै सियजूकी सोऽहं शब्द प्रमाण ।
सब विधी मन बिकी गयो अलिरी लखि मधुरी मुसक्यान
जाकी सूरत पर रघुनन्दन वारत तन मन प्राण।
सिय पद कमल बसत जाकेहिय पिय भवरा मँडरान ॥
कृपा चाहिये सियस्वामीनि का रूठे सकल जहान
जाचत युग कर जोड़ि विहारिनी दीजै पदरति दान ॥

सियाजूको जे जन जानचुके

तिनको रसिक लाल रघुनन्दन आपनो मान चुके
भव भय जन्म मरन रोगादिक सब दुःख भान चुके
श्रीअलिविहारीनी की सियस्वामिनी दृढ़ पहिचान चुके

श्रीजानकीवल्लभाय नमः ।

श्रीमती सर्वेश्वरि चारुशीलायै नमः।

अथ श्रीसर्वेश्वरिचारुशीलाऽर्चनविधिः प्रारम्भः

ॐ स्वस्तिन इन्द्रो बृद्धश्रवाः स्वस्तिनः पूषा विश्व-बेदाः स्वस्तिनस्तार्क्ष्यो ऽरिष्ठ नेमिः स्वस्तिनो बृहस्पतिर्द-धातु॥ १ ॥ ॐ पयः पृथिव्याम्पय ओषधीषु पयोदिव्यन्त-रिक्षेपयोधाः पयः स्वतीः प्रदिशः सन्तुमह्यम् ॥ २ ॥ ॐ विष्णोरराटमसि बिष्णोः श्नप्त्रे स्थो स्युरसि विष्णोः ध्ध्रु वोसि वैष्णवमसि बिष्णवे त्वा ॥ ३ ॥

ॐ शान्ति श्शान्तिश्शान्तिः इति शुभम्भूयात् ।

चारुशीले महामाये ब्रह्मविष्णुशिवस्तुते । आवा-हयामि देवि त्वां अर्घ्यपूजां गृहाण मे । ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं चां चारुशीलायै नमः इत्यावाहयामि ॥ १ ॥ इत्यावाहनम् ।

चारुशीलेमहामाये ब्रह्म विष्णु शिवस्तुते । स्थापया-मीति देवेशि सदा मे सन्मुखी भव ॥ ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं चां चारुशीलायै नमः स्थापयामि ॥ २ ॥ इति स्थापनम् ।

चारुशीले महामाये ब्रह्म विष्णु शिब स्तुते । गृहाणार्घं मयादत्तं सर्वेश्वरि नमोऽस्तुते ॥ ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं चां चारु शीलायैनमः अर्घं समर्पयामि ॥ ३ ॥ इत्यर्घम् ।

चारुशीले महामाये ब्रह्मविष्णुशिवस्तुते । पाद्यं गृहाण देवेशि सर्वेश्वरि नमोस्तुते ॥ ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं चां चारुशीलायैनमः पाद्यं समर्पयामि ॥ ४ ॥ इति पाद्यम् ।

चारुशीले महामाये ब्रह्म विष्णु शिव स्तुते। आचमनीयं मयादत्तं गृहाण परमेश्वरि ॥ ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं चां चारुशीलायैनमः आचमनीयं समर्पयामि ॥ ५॥ इत्याचम०

चारुशीले महामाये ब्रह्मविष्णुशिवस्तुते । पञ्चामृतं मयादत्तं गृहाण परमेश्वरि ॥ ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं चां चारुशीलायैनमः पञ्चामृतं समर्पयामि ॥ ६ ॥ इतिपञ्चामृतम् ।

चारुशीले महामाये ब्रह्म विष्णु शिवस्तुते । स्नानं गृहाण देवेशि प्रसीद परमेश्वरि ॥ ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं चां चारुशीलायैनमः स्नानंसमर्पयामि ॥ ७ ॥ इतिस्नानम् ।

चारुशीले महामाये ब्रह्म विष्णु शिवस्तुते । वस्त्रं गृहाण देवेशि कृपां कृत्वा ममोपरि ॥ ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं चां चारुशीलायैनमः वस्त्रंसमर्पयामि ॥ ८ ॥ इतिवस्त्रम् ।

चारुशीले महामाये ब्रह्म विष्णु शिवस्तुते । भूषणानि गृहाणत्वं ममैश्वर्यं प्रपूरय ॥ ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं चां चारुशीलायैनमः भूषणानिसमर्पयामि ॥ ९ ॥ इतिभूषणानि ।

चारुशीले महामाये ब्रह्म विष्णु शिवस्तुते । चन्दनं

शीतलं दिव्यं गृहाण त्वं मयोद्यतम् ॥ ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं चां चारुशीलायैनमः चन्दनंसमर्पयामि ॥ १० ॥ इतिचन्दनम् ।

चारुशीले महामाये ब्रह्म विष्णु शिवस्तुते । तुलसीं पुष्प माल्यं च संगृहाण प्रसीद मे ॥ ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं चां चारुशीलायैनमः तुलसीपुष्पमाल्यंसमर्पयामि ॥ ११ ॥ इति तुलसीपुष्पमाल्यम् ।

चारुशीले महामाये ब्रह्म विष्णु शिवस्तुते । धूपं गृहाण देवित्वं मम कार्याणि साधय ॥ ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं चां चारुशीलायैनमः धूपंसमर्पयामि ॥ १२ ॥ इतिधूपम् ।

चारुशीले महामाये ब्रह्म विष्णु शिवस्तुते । दीपंगृहाण दत्तं मे हृदयज्ञानंच विनाशय ॥ ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं चां चारुशीलायैनमः दीपंसमर्पयामि ॥ १३ ॥ इतिदीपम् ।

चारुशीले महामाये ब्रह्म विष्णु शिवस्तुते । समर्पयामि देवेशि नैवेद्यं रुचिवर्द्धनम् ॥ ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं चां चारुशीलायैनमः नैवेद्यंसमर्पयामि ॥ १४ ॥ इतिनैवेद्यम् ।

चारुशीले महामाये ब्रह्म विष्णु शिवस्तुते । शीतलं स्वादु शुद्धंच परं तृप्तिकरं जलम् । समर्पयामि देवेशि प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं चां चारुशीलायैनमः जलंसमर्पयामि ॥ १५ ॥ इतिजलम् ।

चारुशीले महामाये ब्रह्म विष्णु शिवस्तुते। ताम्बूलं च सुगन्धंच संगृहाण सुरेश्वरि॥ ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं चां चारुशीलायैनमः ताम्बूलंसुगन्धंच समर्पयामि ॥ १६ ॥ इति ताम्बूलं सुगन्धं च।

चारुशीले महामाये ब्रह्म विष्णु शिवस्तुते। आर्तिक्यं च मयादत्तं संगृहाण प्रसीदमे ॥ ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं चां चारुशीलायैनमः आर्तिक्यंसमर्पमामि ॥ १७ ॥ इतिआर्तिक्यम्।

चारुशीले महामाये ब्रह्म विष्णु शिवस्तुते। अस्तोस्याम्यहंचदेवि त्वां प्रसीद परमेश्वरि ॥ ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं चां चारुशीलायैनमः स्तोत्रं समर्पयामि ॥ १८ ॥ इतिस्तोत्रम्।

चारुशीले महामाये ब्रह्म विष्णु शिवस्तुते। नमस्करोम्यहं देवि प्रसन्ना भव सर्वदा॥ ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं चां चारुशीलायैनमः नमस्कारंसमर्पयामि ॥१९॥ इतिनमस्कारम्

चारुशीले महामाये ब्रह्म विष्णु शिवस्तुते। पूजया मे प्रसन्ना त्वं अपराधं क्षमस्वमे॥ ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं चां चारुशीलायैनमः इत्यपराधक्षमापणम् ॥ २० ॥

आसनं स्वागतं पाद्य मर्घमाचमनीयकम्।
पञ्चामृतं तथा स्नानं वसनाभरणानि च॥
सुगन्धं सुमनो धूपं दीपं नैवेद्यमेवच।
प्रार्थना चरणार्चाच अर्चणानि च षोडशः ॥२॥

इति श्रीसर्वेश्वरिचारुशीलार्चनविधिः षोडशोपचारः।

अथ श्रीचारुशीलाव्रतजन्मोत्सवः प्रारम्भः

श्रीचारुशीलायै नमः

साकेते सरयूतटे मणिभुवि श्रीजानकीवल्लभं कुंजे पुष्पमये प्रमोदविपिने नित्यं सखीभिर्युतम् ॥ वाक्यैर्हास्ययुतैः कटाक्षमधुरैः सम्मोदयन्तं प्रियां, क्रीडन्तं मधुरं कदा रघुवरं द्रक्ष्याम्यहं चक्षुषा ॥ १ ॥

परमदिव्यधाम श्रीसाकेतसंज्ञक श्रुतिप्रतिपाद्य श्रीअयोध्याजी में श्रीसरयूजी के तटमें मणिमय दिव्यभूमि प्रमोदबनमें पुष्पमय दिव्य कुञ्जमें सखी बृन्दों से नित्यहीयुक्त अपनी प्राणप्रिया को कटाक्ष, माधुर्य्यसे पूर्ण अनेक हास्ययुक्त वाक्यों से प्रमोदित करते हुये क्रीड़ा में परायण रघुकुलमणि श्रीरामजी को अपने नेत्रों से देखकर मैं कृतार्थ होऊं ऐसा समय कब आवेगा ।

श्रीपार्वत्युवाच

कथ्यतां मे विधिं देव? उत्सवस्य व्रतस्य च ॥
यत्प्रभावेण जानक्या नित्यसेवां लभेन्नरः ॥२॥

हे देव मेरे ऊपर कृपाकर सर्वयूथेश्वरियों के व्रत तथा उत्सवकी विधि को कहिये जिसके प्रभावसे मनुष्य श्रीमिथिलाधिपराजकिशोरीजू की नित्य सेवा को पासके ॥ २ ॥

श्रीशिव उवाच

प्रथमस्तु प्रवक्ष्यामि आसां व्रतविधिं परम् ॥
श्रूयतां सावधानेन सर्वेषां हितकाम्यया ॥३॥

हे देवि प्रथम इन यूथेश्वरियों के श्रेष्ठव्रतविधि को सर्व जीवों के हितकी कामना से मैं कहूँगा आप सावधान होकर सुनिये ॥३॥

व्रत पूर्वदिने देवि, माषचणकादिसंत्यजेत् ॥
तैलादिलेपनं चैव शैय्यां मैथुनमेव च ॥ ४ ॥

हे देवि व्रत करनेवालेको उर्द चना आदिका भोजन तथा तैल लगाना पलँग आदि सेज पर सोना मैथुनादि निषिद्ध कर्मोंका त्याग व्रत के पहिले दिन से ही कर देना चाहिये ॥ ४ ॥

व्रतस्य च दिने देवि मंगलाय शुभात्मना ॥
गृहंच लिप्यते सांगं गोमयेन ततः परम् ॥ ५ ॥

हे देवि शुभेच्छु पुरुष को व्रत के प्रथम दिन मंगल के लिये शुभदायक वस्तुओं से तथा गोमय आदिसे गृह को तथा आँगनादिक को लेपन करना चाहिये ॥ ५ ॥

गंधेन वारिणा सिंचेत्ततः परिवितानकम् ॥
मंडलं रचयेद्दिव्यं चतुरस्रविधानकम् ॥ ६ ॥

एवं सुगंधित जल से सींचकर भूमि में एक चौकी पर मण्डलाकार दिव्य वितान चारिकोन वाला बनावे ॥ ६ ॥

रोपयेत्कदलीस्तम्भं रचयेत्तोरणादिकम् ॥
वसुदिक्षु ततो देवि वारिणापूरि तान् घटान् ॥७॥

निधायदीप संयुक्तान् पुष्प माल्यादि संस्कृतान् ॥
तेषामग्रे महादेवि पीतेन स्वस्तिकान् रचेत् ॥८॥

पुनः मंडपके चारोंतरफ केला के खम्भ तोरणादि से सुसज्जित कर लगावे फिर पवित्र जल से पूरित पुष्पमालादिसे अलंकृत दीप संयुक्त आठों दिशा में आठ कलशों को स्थापित करै ॥ उनके अग्रभाग में नील पीतादि रंगों से स्वस्तिकादि रचना करै ७ ॥८ ॥

ततो मंडपमध्ये तु मण्डलं स्वर्णवर्णकम् ॥
तस्यैव षोडशदलं पद्मं मध्ये विलिख्यते ॥ ९ ॥

इस के बाद मंडप के मध्यमें स्वर्ण वर्ण का एक मंडल वनावै उसमण्डल के मध्यमें षोडशदल पद्म लिखना चाहिये ॥ ९ ॥

तस्योपरि घटं चैकं स्थापयेज्जलसंयुतम्॥
धारयेत्सान्नकं पात्रं तस्योपरि च मृन्मयम् ॥१०॥

उस कमल के ऊपर अन्न के सहित जलयुक्त एक मृण्मय घट स्थापित करै ॥१०॥

तन्मध्ये स्थापयेद्देवि तस्या मूर्तिश्च कांचनीम् ॥
मृन्मयीं वा सुविधिना षोड़शैः पूजयेत्तथा ॥११॥

उसपर एक मनोहर पात्र शुभवस्त्रों से युक्त रखकर उस पर श्रीसर्वेश्वरीजू की स्वर्णमयी अथवा मृण्मयी मूर्ति को स्थापित कर षोड़शोपचारों से पूजन करै ॥ ११ ॥

ॐ ह्रीं क्लीं पूर्वकं तस्याश्चतुर्थ्यन्तं नमोन्तकम
नाम मंत्रं जपेच्चासामेकलक्षप्रमाणतः ॥ १२॥

ॐ ह्रीं क्लीं चाँ चारुशीलायै नमः इस मंत्रसे षोड़शोपचार पूजन करै और एक लक्ष इसी मंत्र का जप करै इसी तरह सब यूथेश्वरियों का पूजन क्रम से समझना चाहिये और यह भी जानना चाहिये कि प्रथम स्वस्ति बाचन कर पुनः कलश स्थापन कर छः देवों का पूजन करना चाहिये जैसे कि ॐ गणेश्वराय नमः

ॐ दिवाकराय नमः ॐ वह्नये नमः ॐ शिवायै नमः ॐ शिवाय नमः ॐ बिष्णवे नमः इसपूजन के बाद श्रीचारुशीलाजी का वा अन्य यूथेश्वरियों का पूजन करे ॥ १२ ॥

❀ अथ ध्यानम् ❀

श्रीचारुशीलाजू के पूजन के प्रथम इस तरह ध्यान करै

ॐ स्वर्णाभाम्बुजकरां विद्युत्पुंजसमप्रभाम चारुशीलामहं ध्याये सर्वकामार्थसिद्धये ॐ ह्रीं क्लीं चारुशीलायै नमः ॥ १३ ॥

स्वर्णके आभा समान तनु, कमलके समान कर और विजलीके समान प्रभावाली ऐसी श्रीचारुशीलाजू को मैं सर्वकामार्थ की सिद्धि के लिये ध्यान करता हूँ ॐ ह्रीं क्लीं चारुशीलायै नमः इसी एकादशाक्षर मंत्र से अर्घ्य पाद्य आचमनादि षोड़शोपचार समर्पण करै अर्घ्य देने का पृथक् भी मंत्र है ॥ १३ ॥

चारुशीले महामाये ब्रह्मविष्णुशिवस्तुते ॥
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं सर्वेश्वरि नमोऽस्तु ते ॥ १४ ॥

हे चारुशीले हे महामाये हे ब्रह्माविष्णु शिवस्तुते हे सर्वेश्वरि आपको मैं नमस्कार करता हूँ मैं अर्घ्य देता हूँ इसे आप ग्रहण कीजिये ॥ १४ ॥

इमं मंत्रं समुच्चार्य्य कथान्ते चार्घ्यं दापयेत् ॥
एवं यः कुरुते देवि मैथिली तं प्रसीदति ॥ १५ ॥

इस ऊपर के मूल मंत्र को उच्चारण कर कथा के अंतमें अर्घ देवै इस प्रकार जो पूजन करता है उसपर श्रीमैथिलीजी प्रसन्न होती हैं ॥ १५ ॥

श्री चारुशीलामावाहयामि, स्थापयामि ॥ ॐ ह्रीं क्लीं चारुशीलायै नमः ॥ १६ ॥

इस मंत्र से श्रीचारुशीलाजू का आवाहन करता हूँ स्थापन करता हूँ और पूजन करता हूँ ॥ १६ ॥

आसनं पाद्यं अर्घ्यमाचमनीयं स्नानीयं वस्त्रं चन्दनं कुंकुमं पुष्पं पुष्पमाल्यं धूपं दीपं नैवेद्यं ताम्बूलं अर्घ्यं नीराजनं समर्पयामि ॥ १७ ॥

इस तरह आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, चन्दन कुंकुम, पुष्प, पुष्पमाला, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, अर्घ्य, आरती आदि समर्पण करै पुनः इस स्तव का पाठ करै ॥ १७ ॥

ॐ दीव्यत्पद्मपदारुणां पदनखैश्चन्द्रांशुखर्वीकृतां। रम्भास्तम्भसुपुष्टचारुजघनां स्वल्पोदरीं श्रीमतीम्। मालूरोचकुचामनंगरमणीं लीलाविलज्जी

16738

कृतां । सीताराम रसाश्रयैकरसदां श्रीचारुशीला-म्भजे ॥१॥

खिले हुए कमल के समान अरुण चरण कमल वाली अपने पद नखों के प्रकाश से चन्द्रमा के किरणों को तुच्छ कर देने वाली केला के खंभके समान सुन्दर पुष्ट चारुजंघावाली तथा स्वल्पोदरी (स्वल्प उदरवाली) बिल्वफल के समान सुन्दर उच्च बक्षस्थल के अंग हैं जिनके तथा अपनी लीला से काम की रमणी रति को भी लज्जित करने वाली श्रीसीतारामजी के रसाश्रय अनन्य रसिकोंको रस देनेवाली श्रीमती सर्वेश्वरी श्रीचारुशीलाजीको मैं भजता हूँ॥१

भाव—दीव्यत्पद्म पदारुणां,इसका तात्पर्य्य यह है कि जिस समय में कमल सम्पुटित अवस्था को छोड़ देता है और खिल जाता है उस समय के अपने नवीन सौरभ से दिगन्तों को पूरित करता हुआ अपने पार्श्ववर्ती सुकृत जनों के घ्राण रंध्र द्वारा हृदय कमलमें जाकर एक प्रकार का अद्भुत उद्गार पैदा करते हुए सर्व शरीर में आयु वर्द्धक रुधिर का संचार करता है इसी प्रकार जीवों के पुण्य संचय से दुर्भाग्य रजनी की समाप्ति और सर्वेश्वर राजेन्द्र नन्दन श्रीजानकीवल्लभजू का प्रतापरवि भावुक के हृदय पटल पर उदय होकर श्रीसर्वेश्वरीजूके चरणकमल का दर्शन पाता है। और उसके हृदय पटल पर उन चरणों के दर्शन जन्य अनुरागो-द्गार भावुक के रोम रोम में आनंदलहरी को फैलाता है यह भाव है। पदनखैश्चन्द्रांशुखर्वीकृतांम्—इसका तात्पर्य यह कि जैसे

चन्द्रमा अपने किरणों से तथा आह्लादक शीतलत्वादि गुणों से भिन्न भिन्न आश्रितों को सुख देता है वैसे ही श्रीसर्वेश्वरीजू अपने आश्रितों को सुख देती हैं अर्थात चकोरगण चन्द्रमा को जैसे देखकर परमाह्लादपूरित हो अपने देहकी सुधि भूलकर एकटक देखते है वैसे ही श्रीसीतारामजी के प्रिय परिकर तथा प्रेमीरसिक जन श्रीसर्वेश्वरीजू के शरीरकी प्रेममयी दिव्यकान्ति से अपने अन्त: करण में परमाह्लाद पूरित हो उनके मुख चन्द्रको एकटक देखते हुये रसिकेन्द्र शिरताज श्रीराजेन्द्रनन्दनजू के दिव्यभाव रूप अमृत महोदधि में प्लावित होने की आशा में मग्न रहतेहैं ॥

स्वल्पोदरीं श्रीमतीम् एकभावतो इस पदका यही स्पष्ट है कि स्वल्प उदर होना नायिकावों के भाग्यका सूचक होता हुआ सौन्दर्य्यका विशेष बढ़ाने वाला है इसी से श्रीमतीम्कहा—दूसरा, स्वल्प कहतेहैं. सूक्ष्मको जितने सूक्ष्म भाव हैं वे सब आपके उदर में बसते हैं जैसेकि सबसे सूक्ष्म ब्रह्मका स्वरूप है उसका दिव्य ज्ञान आप ही के उदर में सदा निवास करता है भाव श्रीसर्वेश्वरीजू के चरणोंका आश्रय लेते हैं वेही ब्रह्मके सूक्ष्माति दिव्य ज्ञान के भागी होते हैं अत: आप श्रीमती हैं भाव यह कि आपही के अधिकार इख्तियार में है जिसके ऊपर कृपाकरैं उसे श्री को देतीहैं ॥

मालूरोच्चकुचाम्—मालूरविल्व को कहते हैं वैसे ही पुष्ठ-काठिन्ययुक्त आपके उरोजाङ्ग हैं भाव यह कि जैसे बिल्वफल श्रीशिवजी को प्रसन्नकर और आश्रित का अभीष्टफलदाता होता है वैसे ही श्रीसर्वेश्वरीजू के चरण सेवा करने वाले देवाधिदेव

कल्याणरूप श्रीराजनंदनजू की पूर्ण कृपा को पाकर विषय से सर्वथा विमुख होते हैं और दिव्यदम्पति श्रीसीतारामजू के परम सुखमय माधुर्य्यरस के भोक्ता होते हैं और दूसरों को इसी सुख के भागी बनाने में समर्थ होते हैं अनंगरमणी लीलाविलज्जीकृताम्- तात्पर्य्य यह है कि अनंग जो काम जगत् का व्यामोहक है उसकी रमणी रति की लीलाको कहाँ तक कहा जायगा जो अनंग को भी व्यामोह बढ़ाकर अपने वशमें रखती है ऐसे ही श्रीसर्वेश्वरीजू भी अपने अपार सौन्दर्य्य से रसिक शिरताज श्रीराजनन्दनजू को अपनी लीला से व्यामोहित कर अपने वश में रखती हैं—भाव इसीसे श्रीसर्वेश्वरीजू के कृपाश्रित रसिकजन श्रीराजनंदनजू को अपने गुण गौरव से स्वभावत: अपने ऊपर अतिशय प्रसन्न कर उन्हें सदा हृदय में बसाने को समर्थ होते हैं ॥

सीतारामरसाश्रयैकरसदाम् —श्रीसीताराम जू के रसाश्रय भावुक जनों को प्रधान रस को देनेवाली हैं यहाँ पर केवल रसाश्रय कहा गया, इसमें 'रसशब्दस्तु शृंगारे मुख्यवृत्तितया स्थित:' शांडिल्य संहितायां, इस प्रमाण से शृंगाररस ही लेना चाहिये इस रस के आश्रयभूत आश्रय लेनेवाले भाग्यशाली रसिकजनों को एक अर्थात् प्रधान जो रस है उसके देने वाली श्रीसर्वेश्वरीजी ही हैं अर्थात पूर्वजन्म के सुकृत संचयवश जिनका मन रसराज में स्थिती को पाचुका है और सामान्यत: आचार्य्योपदेश द्वारा उस रस की भावना करते हुये अनुभव करते हैं जब श्रीसर्वेश्वरीजू की कृपा उनके ऊपर होती है तब वे भावुकजन इस रसके स्वरूप को

गाँभीर्य्यभावों के पूर्ण ज्ञान पाकर परमानंद को प्राप्त हुये रस रूप दिव्यदम्पति श्रीसीतारामजू के ऐकान्तिकलीलारस के भोक्ता हुये उस रस में प्रविष्ट होकर उसकी पराकाष्ठा को जान सकते हैं ऐसी श्रीचारुशीलाजू को मैं भजता हूँ ॥ १ ॥

कस्तूरीनवबिन्दुचारुचिबुकां विम्बाधरीं स्वर्णभां,
मुक्ताभूषणभूषितांगरुचिरां नीलाम्बराम्मालिनीम्॥
लीलापद्मकराञ्चितां गुणवतीं गन्धर्वविशिक्षाकरीं
रासोल्लासबिधायिनीमहरहः श्रीचारुशीलाम्भजे
॥ २ ॥

कस्तूरी का नवीन विन्दु चारु चिबुक में है जिनके बिम्बाफल के समान अधरवाली, और स्वर्ण के समान आभा है जिनकी मुक्तामणि आदि भूषण से भूषित, रुचिर अंग, नीलाम्बर धारण किये, सुगन्धित पुष्पों की माला से विभूषित, नीलपद्म करकमल में लिये सब गुणों से सुशोभित, गानविद्या में प्रवीणा गन्धर्वियों को भी शिक्षा देने वाली दिव्यदम्पति के रासोल्लास को विधान करने वाली श्रीचारुशीलाजू को निरन्तर मैं भजता हूँ ॥ २ ॥

भाव—'कस्तुरीनवविन्दुचारुचिबुकाम्' कस्तुरी की नवीन विंदु से चारु नाम सुंदर है चिवुक जिनका तात्पर्य्य यह कि कस्तुरी स्वभावतः अपने परिमल से समीपवर्ती समस्त जनों को अपूर्व

आह्लाद वर्द्धक एक तरह का नवीन उद्गार देते हुये सब को सुखी करती हैं वे श्रीसर्वेश्वरी जू अपने शुभगुणों कीपरिमल से आश्रित भावुकजनों के हृदय में युगल सरकारके माधुर्य्यगुणों का परिमल-प्रवाह बढ़ाकर उनको अपूर्व आह्लाद देकर सुखी करती हैं ॥ बिम्बाधरीम्—बिम्बाके फलकेसमान अधरवाली तात्पर्य्य कि बिंबाफल जैसे रस से भरा हुआ अतिकोमल लाल दिव्य माधुर्य्य को दिखला कर सब के हृदय में आह्लाद वर्द्धक है वैसे ही श्रीसर्वेश्वरीजी श्रीसीतारामजू के दिव्य माधुर्य्य गुणों को वर्णन कर अपने आश्रित जनों को रस से पूर्ण करती हैं ॥

स्वर्णभाम्-स्वर्ण के समान आभावाली हैं अर्थात् स्वर्ण जैसे बहुमूल्य और पवित्र सब के चित्तको आकर्षण करने वाला है वैसे ही आप के अंग स्पर्श से सब भूषण भी आश्रित जनों के चित्त में पवित्रता बहुमूल्यता गौरव आदि गुणों को बढ़ा कर उन्हें ब्रह्मादिदेवों से भी पूज्य बनाते हैं जो भाग्यशाली श्रीसर्वेश्वरीजी के भूषणों का ध्यान करते हैं ॥ रुचिराम्-रुचिको देने वाली है—भाव जिनके हृदय में संसारको रूक्षता से दिव्यदम्पति श्रीसीतारामजू के रूपगुणमाधुरी में रुचि नहीं होती है वे यदि किसी सुकृतबश श्रीसर्वेश्वरीजू के चरणाश्रित होजावैं तो उन्हें यह लाभ हो सकता है कि श्रीसीतारामजू के दिव्य माधुर्य्य रस के रुचि को पाकर संसार की रुचि से उन्हें अरुचि हो जाती है ॥

नीलाम्बराम्-नील अम्बर को धारण किये हैं भाव, सरकार श्याम रँग को सदा ही अति प्रेम से आदर किये हैं क्योंकि अन्य

रँगों को छोड़ कर आप श्याम रँग ही को अपने श्रीअंगों में धारण किये हैं श्रीसर्वेश्वरीजी नीलाम्बर को धारण कर अपने आश्रित जनों को सूचित करती हैं कि यह रँग अन्य रँगों की अपेक्षा बहुत प्रशंसनीय और परमोत्तम है। इसी रँग से अपने चित्त को रँगने से श्रीमहाराजनंदन जू के दिव्य अनुपम श्याम सौन्दर्य्य सागर रूप के अनुभव करने योग्य तुम सब हो सकोगे ॥

मालिनीम्—अनेक रँग के पुष्पोंकी मालाओं से आप भूषित हैं अर्थात् जैसे फूलों की माला अपने सुगंधि द्वारा श्रीसर्वेश्वरीजू के चरण सेवक रसिक जनों को सुगंध से प्लावित करती है वैसे ही श्रीसर्वेश्वरीजू के गुण समूह की माला प्रेमियों के चित्त को आकर्षण कर उन्हें दिव्य दम्पति की रस माधुरी के पान को करा कर उन्हें अद्भुत चमत्कार मय बनाती हैं॥

लीलापद्मकराञ्चिताम्--लीला के बढ़ाने वाले पद्मपुष्प से श्रीसर्वेश्वरीजू का कर कंज सदा ही पूजित है तात्पर्य्य यह है कि श्रीसर्वेश्वरीजू अपने करकमल में कमल को धारण किये हैं उससे प्रिय प्रेमीजनों को यह सूचित करती हैं कि श्रीसीतारामजू के चरणकमल, करकंज, मुखपद्म, आश्रितों के चिन्तवन करने से तीनों तापों की शान्ति करते हैं इसीसे रसिक जन इस रस में पगे हुये कोई सदा चरण कमलके ध्यान ही में लीन हैं कोई कर कमल की माधुरी सब दुःखों के निवारण करने वाली समझ कर उसी का आश्रय निरन्तर लिये हैं कोई प्रेमी मुख पद्म के अपूर्व रस में अपने मनको लुब्ध मधुकर बनाकर इसी में सदा मग्न रहते हैं

गुणवतीम्---आप गुणवती हैं अर्थात क्षमा, दया, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य्य, वीर्य्यादिक, कल्याण गुणों से पूर्ण हैं तात्पर्य यहकि जो सब साधनों को छोड़ कर केवल श्रीसर्वेश्वरीजू के कृपाश्रित होकर उन्हीं के अवलंब में अपना सर्वस्व कल्याण समझते हैं उनके हृदय में दिव्य ज्ञान, ऐश्वर्य्य, वीर्य्य, तेज, शील, संतोष आदि कल्याण गुणोंका आविर्भाव होता है जिससे वे सब से पूज्य और गौरव शाली हो कर श्रीसीताराम जू के कृपा पात्र बनते हैं ॥

गंधर्विशिक्षाकरीम्---फिर श्री सर्वेश्वरीजी गंधर्वियों का भी शिक्षा देने वाली हैं अर्थात यद्यपि गंधर्वगण वाद्य गान नृत्य आदि भेदों के सबसे अधिक पंडित होते है और उनकी पत्नी जो हैं उनके सरस कंठ से गान अति प्रिय और शिक्षा सम्पन्न होता है इसी से श्रीहनुमान जी ने सरकार से चलते समय यह बरदान माँगा कि आपका यह रामायणीय चरित्र हमें अप्सरागण सुनाया करें उनमें गंधर्व गण भी आगये तात्पर्य्य यह कि नृत्य गान विद्या में गंधर्वियों से बढ़कर कोई भी दूसरा प्रशंसनीय नहीं होसकता है उन्हें भी श्रीसर्वेश्वरीजी शिक्षा देती हैं जिससे वे अपनी आज तक कीभूल को छोड़कर अब गान विद्या के मर्म को जानने वाली अपने को समझती हैं अतएव—

रासोल्लासविधायिनीम्—भाव—अपने शिक्षित परिकर समाज के सहित दिव्यदम्पति श्रीसीतारामजू के चित्त में हर्ष के बढ़ाने वाले रासोल्लास को आप सदा विधान करती हैं अर्थात रसिक शिरोमणि श्रीरजेन्द्रनंदन जू रासलीला के सदाही आकांक्षी

रहते हैं श्रीसर्वेश्वरीजू अपने परिकरों के सहित सब समाज का रास के उचित विभाग करना और सब का समय बाँधना जिससे वे सब अपने अपने अवसर पर गान वाद्य नृत्यादि के भेदों से दिव्यदम्पति श्रीसीतारामजू को प्रसन्न करैं 'विधायिनीम्' यह शीलार्थक प्रत्यय केदेनेसे यह सूचित होता है कि सब लीलाओं से दोनों प्रभु को रास लीला विशेष प्रिय है उसके विधान करने वाली श्रीसर्वेश्वरीजू नित्य उत्साहित रहती हैं यह तात्पर्य्य है ऐसी श्रीचारुशीला देवीजू को मैं सदा सेवन करता हूँ ॥ २ ॥

पुनः श्रीसर्वेश्वरीजू के समयोचित दिव्यदम्पति की सेवाको सूचित करते हुये ऋषि वर्णन करते हैं कि

पुष्पस्याभरणं निदाघसमये संगुम्फ्य सर्वाङ्गिकम्
दम्पत्योश्च यथाविभज्य हरितैर्नीलैश्च पीतैर्नवैः ॥
रङ्गैरञ्चितमध्यप्रान्तविशदं वासस्तथा पौष्पकं ह्यानी-
याननसुस्मितौजनकजारामौ यया लंकृतौ ॥३॥

ग्रीष्म के समय में सुगंधित अनेक पुष्पों के आभरणों को रचकर दिव्यदम्पति के सर्वाङ्ग में धारण कराकर बिभाग पूर्वक हरित नील पीत नवीन नाना रँगके बिशद बस्त्रों की रचना कर पुष्प की शय्या पर मंद २ मुसकराते हुये श्रीजनकराजकिशोरीजू तथा श्रीराजकिशोरजू को अलंकृत किया करती हैं ॥ ३ ॥

भाव-पुष्पस्याभरणम्—जब ग्रीष्म समय में भास्वान भगवान

की प्रखरतर किरणें उष्णमय सब जगत को बनाकर गर्मीकी बिशेष वृद्धि करने को उद्यत होती हैं तब उस निदाघसमय में श्रीसर्वेश्वरी जू अपने सर्वस्व प्राण प्रिय दम्पति श्रीराजकिशोरीजू और राजेन्द्र-किशोरजू इन्हें यह निदाघ समय की गर्मी न व्याप्त होवै ऐसी सेवा हमैं करनी चाहिये तब आप अपने सत्य संकल्पशिक्षित परिकरोंको प्रेरित कर अनेक रँग के सुगन्ध मय मृदुतर पुष्पों को संचय कर आप फूलों के आभरण को संगुंफन करती हैं और वे भूषण ऐसे मनोहर रुचिर सब अंगों के लायक तैयार करतो हैं जिन्हें देख कर बिश्वकर्मा प्रभृति देव शिल्पी भी मोहित होजाते हैं तथा ब्रह्माजीभी ब्रह्मांड रचयिता होते हुये भी आश्चर्य्य मानते हैं ऐसे हरित नील पीत नवीन रंगों के पुष्पों कों बिभाग पूर्वक भूषण रूप से उन्हें सजावट करतीहैं जोमध्य और प्रान्त आदि प्रदेशों में वहुत प्रशंसनीय दिशाई देख पड़तेहैं वैसेही फूलों के बस्त्र भी दिव्यदम्पति श्रीसीतारामजी के सर्वाङ्गमें रहकरउन्हैंशीतलता देकर ग्रीष्म के ताप को मालूम ही न होने देवै जब श्रीसर्वेश्वरी जूऐसे भूषण बस्त्रों को दिव्य दम्पति के सामने ले आती हैं तब श्रीसीतारामजू प्रसन्नमुखमंडलसे मुसकराते हुये श्रीसर्वेश्वरीजू की प्रशंसा करते हैं और श्रीसर्वेश्वरीजू उन्हीँ भूषण बस्त्रों से दिव्य दम्पति को अलंकृत करती हैं और उनकी दिव्य माधुरी तथा प्रसन्नता से पूर्ण होकर इनके एक टक दर्शन करती हैं॥ ३॥

शय्यां पुष्पमयीं प्रकल्प्य सुखदां पुष्पैर्वितानाम्बरम्
पुष्पैः कंदुकमद्भुतं धनुरपि ज्यामद्भुतं मार्गणम्॥

पौष्पं छत्रमनोहरं च बिमलैः पुष्पैर्वरैश्चामरैः सीता रामसमर्पितं च सकलं तां चारुशीलां भजे ॥४॥

पुनः सर्व सुखदेने वाली पुष्पमयी शय्या को सजाकर पुष्पों ही से बितान अम्बर तथा फूलों की गेंद एवं अद्भुत धनुष और प्रत्यंचा तथा फूलों के ही अद्भुत बाणों की रचना कर और मनोहर पुष्पों से मनोहर छत्र सज कर श्वेतपुष्पों के दो चँवर यह सब सेवा की सामग्री जो श्रीसीतारामजी को समर्पण करती हैं ऐसी श्रीचारुशीलाजू को मै नित्य भजता हूँ ॥ ४ ॥

भाव—शय्यां पुष्पमयीं प्रकल्प्य सुखदाम्—पुष्पमयी कोमल शय्या को आप प्रकल्पित करती हैं अर्थात् अति सुकुमार दिव्य दम्पति को जानकर कोमल पुष्पों की सुख सेज को बिछाती हैं ॥

पुष्पैर्वितानाम्बरम्—तथा पुष्प ही के वस्त्र वितान आदि बनाती हैं ॥

पुष्पैः कन्दुकम्—दिव्य दम्पति के क्रीड़ा के लिये सुन्दर फूलों की गेंद बनाकर समर्पण करती हैं जिससे दिव्य दम्पति यथा समय सर्व परिकरों केसहित कन्दुक लीला करते हैं वैसेही ॥

अद्भुत धनुरपि ज्या मद्भुतं मार्गणम्—अद्भुत फूलों के धनुष और फूलों की ही प्रत्यंचा तथा बाण सब फूलों का बनाकर श्रीराजनंदनजू को समर्पण करती हैं वह ऐसा अद्भुत होता है

जिसेदेख कर ब्रह्मांड के रचने वाले ब्रह्मा को भी प्रगट करने वाले प्रभुआश्चर्यान्वित होकर श्रीसर्वेश्वरीजू के चातुर्य्य की बलैया लेते हैं और प्रशंसा करते हैं तैसेही ॥

पौष्पं छत्रमनोहरम् च विमलैः पुष्पैर्वरे चामरे—मनोहर विमल पुष्पों से छत्र और मनोहर चामर बनाकर भी श्रीसीताराम जू को समर्पित करती हैं यह सकलसामग्री प्रभुवों के चित्त में निरतिशय आनन्द दायिनी जिनकी होती हैं ऐसी श्रीचारुशीला-देवीजू को मैं भजती हुँ ॥ ४ ॥

रामे कामशराहते क्वचिदियं सीता मनोमानिनी
रक्ताम्भोजकलाकुलायसदृशा मौनंगृहीत्वा स्थिता
तस्या माननिवर्तने च वचसां सन्दर्भसंगुंफनं
कुर्वाणाम्वरवर्णिनीम् प्रियसखीं श्रीचारुशीला-म्भजे ॥ ५ ॥

किसी समय में दिव्यदम्पति की मनोहारिणी रसमयीलीला में रसवृद्धि के हेतु अरुणकमलदलनयना श्रीविदेहराजकिशोरीजू मन में मानकोधारण कर मौन को ग्रहण कर किसी निकुंज में जा बैठती हैं श्रीराजकिशोरीजू के मान निवारणार्थं हृदय में प्रीति तथा रागवर्द्धक नाना प्रकार के वचनों का संदर्भ रचना कर प्रसन्न कर लेने वाली मनोहर श्रेष्ठ वर्णयुक्ता श्रीराजकिशोरी

जू की प्रियसखी श्रीचारुशीलाजी को मैं भजती हूँ॥ ५॥

भाव—किसी समय में प्रिय परिकरों के सहित श्रीसीतारामजू दिव्यदम्पति श्रीकनकभवन में सुखसे पर्य्यङ्क पर विराजे हैं श्रीमिथिलेशकिशोरीजू के मन में एक अपूर्व यह इच्छा उठी कि आज प्रीतमजू के शृंगार को अपने हाथ से हम करेंगी श्रीसर्वेश्वरीचारुशीलाजी श्रीचन्द्रकला आदि युत्थेश्वरीयों का साथमें लेकरके श्रीकिशोरीजू के मन के अनुसार भूषणवस्त्र को देती जाती हैं और चतुर शिरोमणि श्रीमिथिलेशकिशोरीजू अपने मन के अनुकूल प्रीतमजू का शृंगार कर रही हैं सब शृंगार होने पर श्रीसर्वेश्वरीजू ने प्रीतमजूको दर्पण दिखलायी तब प्रेमसे पूर्ण चातुर्य्य की सीमा श्रीमिथिलेशकिशोरीजू सामने खड़ी होकर प्रीतमजू की अनूप छटा देखने लगीं सब अंगों को देखतेदेखते हृदय पर दृष्टि आई प्रीतमजू के मणिमयहार में पदिक में अपना प्रतिविम्ब देखों और उसके देखते ही लीलादेवी के सौष्ठव वश मन में यह आया कि यह क्या प्रीतमजू सदा यह कहा करते हैं कि आप से बढ़कर हमको कोईदूसरी प्रेयसी प्रिय नहीं हैं और आज देखती हैं कि प्रीतमजू अपने हृदय में किसी अद्भुत सौन्दर्य्यशालिनी मनोरमा प्रियतमा नायिका को अपने हृदय में वसाये हुये हैं यह हम से कितना छल किये हैं बस इतना आतेही अति कोमल चित्त आपके मन में मान आबैठा और उसी समय कुछ इशारा देकर अपने प्रिय परिकरों को साथ लेकर किसी कुंज में जाविराजीं श्रीराजेंद्रनन्दनजू को यह कुछ मर्म मालूम ही न पड़ा कुछ

देर में किसी के भेजने से मालूम पड़ा कि आप न मालूम किस कारण वश मान कर गई हैं अति कोमल चित्त रशिकशेषर श्रीराजेन्द्रनन्दनजू अति विह्वल हो प्राण प्रियाजू के स्नेह वश जब मिलनेकी उत्कंठा से काम सराहत होते हैं और उधर कुंज में बैठीं हूई श्रीराजकिशोरीजू भी प्राणनाथ में इस कपट की संभावना से प्रेम वश विह्वल भी हैं तथापि प्रणय कोप से अरुण कमल के समान अरुण नेत्रकर मौनको ग्रहण कर कुंज में स्थित हैं उस समय श्रीराजकिशोरीजू के ओर से भेजी हुई चतुर वरनायिकाजाती हैं और अनेक तरह से प्राणनाथ के ओर से प्रेमका उद्गार दिखाती हुई मान के निवारण में प्रयत्नशील होती हैं परन्तु श्रीकिशोरीजू मौन ही रह कर अपनी सखियों से उनके वचनोंका उत्तर दिलाकर उन्हें लौटा देती हैं जब सब थक जाती हैं तब अन्त में सर्वेश्वरी श्रीचारुशीलाजू को आज्ञादेते हैं कि हे प्रिये अब प्रियाजूके मान का निवारण होना दूसरोंसे सर्वथा असंभव है आप जाइये और उन्हें समझाइये और यहाँ ले आइये उस समय आप जाती हैं और श्रीमिथिलेशकिशोरीजू से बहुत प्रार्थना करती हैं अपने वचनों का संदर्भसंगुम्फन करती हैं कि देखिये जो आपके सदा आधीन रहते हैं उनसे मान करना व्यर्थ है नायिकावों का मान करना इसलिये है जिसमें नायक अपने अनुकूल सदा रहै वे तो आपके विना अतिविह्वलहोरहे हैं न किसीसे बोलते हैं और न किसीक्रीड़ा की सामग्री की ओर दृष्टि देते हैं लम्बीस्वाँस लेकर हा प्रिये प्राणधनरूपे यह कहकर मूर्छित होजाते हैंभला

विचार कीजिये जो आपमें इस तरह प्रेम रखने वाले हैं उनसे इतना मान कौन कामका आपतो सदा ही सबको सुखदायिनी हैं फिर ऐसे कठिन मान से मृदुतर अपने वश में रहते हुये कान्त को विरह से व्यथित करना यह आपके लिये कैसे उचित है प्राण नाथ स्वयं ही आते पर वे तोसर्वथा असमर्थ हुये आपके विरह में व्याकुल होरहे हैं उन्हें यहाँ आना कैसे संभव होगा अतः कृपा कीजिये और चल कर उनकी दशा देखिये एवमादि वचनों के संदर्भ से श्रीप्रियाजू के चित्त में एक तरह की कान्त के ऊपर प्रेम प्रगट कर लेनेवाली हैं श्रीप्रियाजू प्रसन्न होकर उन्हें दिव्य, भूषण, वस्त्र, देती हैं और उनके सांथ प्राणनाथ के पास आती हैं प्रिय के बहुत बूझने पर अपने मान का कारण बतलायीं जिसको सुनकर प्राणनाथ ने मणिमय अँगुलीभूषण से उनका प्रतिविम्ब दिखलाया और यह कहा कि देखिये यही रूप हमारे हाथ में है या अन्य किसी नायिका का श्रीप्रियतमजू के ऐसे वचनों को सुनकर आपने अँगुलीभूषण को लेकर सामने खड़े होकर और दोनों प्रति विम्बों को मिलाया तब आपका मान दूर हुआ दोनों प्रिया प्रीतम परस्पर मिले इसतरह की चातुरी से दोनों के मान को दूरकरने-वाली दोनों के प्रिय करने वाली श्रीचारुशीलादेवी को मैं भजती हूँ ॥ ५८॥

पर्य्यङ्के मणिमण्डिते मणिगृहे सर्वर्तुसंशोभने
रत्नद्योतितदीपके युगति भिर्द्वा रेषु संरक्षिते ॥

कामोल्लासविलासविह्वलमना रामो यदाराजते
जानक्यंशभुजो मनोहरतरो रक्ताम्बुजाक्षोवली
॥ ६ ॥

सव ऋतु के मनोहर पुष्पितलता वृक्षादिकों से शोभितरत्नों से शोभितरत्नो के प्रकाशित दीपों से सुसज्जित मणिमय भवन में मणिमंडित पर्य्यङ्क पर मनाहरतर अमल कमलदलनयन विहारानुकूल वलयुक्त प्रेमोल्लासविलास में विह्वल होकर राजाधिराज-कुमार श्रीरामजी अपनी प्राणप्रिया श्रीजनकजाजू के अंशों में भुजदेकर विराजते हैं ॥ ६ ॥

भाव—एक समय मणिमय महल में अनेक तरह के क्रीड़ा सामग्री से पूर्ण सबऋतुओं के योग्य विहार सामग्री पूर्ण जिस में है रत्न के दीपक सब ओर से प्रकाश कर रहे हैं बीच में मणिमयपर्य्यङ्क है कोमल शय्याविछी हैं प्रियनायिका अपने अधिकार से रत्नदंड करकमलों में लेकर द्वार पर रक्षा के लिये खड़ी हैं कि कोई इस रस से भिन्न वुद्धि वाले परिकरबर्ग भीतर न आ सकैं किन्तु शचि शारदा प्रभृति जिनको देखकर लज्जित होवैं ऐसी अनन्त युवतिगण अपनी २ सेवा लिये उपस्थित हैं दोनों के दिव्य माधुरी में मग्न हुई दर्शनकर रही हैं प्राणनाथजू भी प्रियाजूके प्रेमोल्लास विलास से विह्वल मन हुये अपना सर्वस्व प्रियाजू के ऊपर निछावर किये बिराजते हैं श्रीराजकिशोरीजूके रुखको पाकर अपने मनाहरतर भुजा को प्रियाजू के अंश में रख कर सुखका

अनुभव कर रहे हैं श्रीप्रियाजू भी प्राणनाथ को गले में अपनी गलबाँहीं देकर विराजी हैं इस अनंत सुखको पाकर श्रीराजनंन्दनजू मनोहरतर हो रहे हैं सब परिकरगण दोनों की यह माधुरी से अत्यन्त खुशी हो रहे हैं श्रीराजकुमारजू प्रियाजू के अनुराग वश-अरुण कमल के समान नेत्रवाले होकर अपनी दशा को अपने सम्हाल में लाने में सर्वथा असमर्थ हैं यद्यपि आप बली हैं तथापि इस समय अपना सर्वस्व प्रियाजूको समर्पण कर केवल उन्हीं की प्रियता की आकांक्षा से पूर्ण हो रहे हैं ॥ ६ ॥

तत्रादौ परिचारिकागणमुखं यस्या विधानेन वै
नानावस्तुविलाससंचित करं संवर्तते सर्वदा
आनन्दोक्तरसालिनीं जनकजाप्राणेश्वरायेष्टदां
चातुर्याञ्चितलोचनामहरहः श्रीचारुशीलाम्भजे
॥ ७ ॥

उस समय दिव्यदम्पति के पादपरिचर्य्या करनेवाली परिचारिकागण जिनकी आज्ञा विधान से नाना उपकरण विलास से संचित कर सब ओर से प्रवर्तित होती हैं अर्थात् अपनी अपनी सेवा सौज सामग्री को लेकर दिव्य दम्पति के सब ओर सर्वदा उपस्थित होती हैं उस समय आनंद रसशालिनी श्रीजनकजाप्राणेश्वरजूको अपने चातुर्य्ययुक्त योजना वों से उनके अभीष्ट को पूर्ण

करती हैं ऐसी श्रीचारुशीलादेवीजी को मैं सदा भजती हूँ ॥ ७ ॥

भाव—ऐसे सुखसमय में अनंत यूथ सखीगण जिनके विधानसे अर्थात् जिसको जिस सेवामें श्रीसर्वेश्वरीजू नियुक्त करती हैं वेही दिव्यदम्पति की चरणसेवा में प्रेम से अपना सर्वस्व समझ कर तत्पर होती हैं यहाँ पर चरणसेवा उपलक्षणहै अर्थात् दिव्यदम्पतिजू के रुचिअनुसार सब सेवा को श्रीसर्वेश्वरीजू की आज्ञा से अपने करकमलों में लिये हुये हैं यह सर्वदा का नियम है उस समय आनंद को बढ़ाती हुई रसशालिनी अर्थात रस के वृद्धि की सामग्री का कारण आप जानती हैं इसीसे श्रीजनकजाजू के समेत प्राणनाथ को जो अपेक्षित होता है वही आप देती हैं चातुर्य्य से आपके लोचन भूषित हैं तात्पर्य्य यह है कि रसेश रस वर्द्धक दिव्यदम्पति श्रीसीतारामजू की जिस लीला में जो चेष्टा होती है उसका सजावट और समग्र रूपता आपके लोचन कोरही में भराहै केवल लोचन के इशारा से सब लीलाओं को पूर्णरूपसे आप पूर्ण करती हैं ऐसी श्रीचारुशीलादेवीजू को मैं भजती हूँ ॥ ७ ॥

आखेटायगते समानसखिभी रामेसरोजानने
ह्युत्तुङ्गैर्गजवाजिभिः परिवृते नीलांशुकाङ्गावृते ॥ सीताशोकमुपागता विरहिणी तस्यामुदे
कौतुकान्याकल्पयाति विनोदविस्तृतकरांतां

चारुशीलाम्भजे ॥८॥

जब गजबाजि सहित बराबरीवाले सखाओं को साथ लेकर हरित बस्त्रों को धारण कर राजीवलोचन महाराजकुमार श्रीरामजी मृगया खेलने को चले जाते हैं उससमय बिरह से व्याकुल श्रीविदेहनंदिनीजू शोक को प्राप्त हो जाती हैं तब उनके आनंद के लिये अनेक तरह के कौतुकों को कल्पना कर जो बिनोद का बिस्तार कर देती हैं ऐसी श्रीचारुशीलादेवीजीको मैं भजती हूँ ॥ ८ ॥

भाव—ऐसेही जब श्रीराजनंदनजू बड़े बड़े ऊँचे गजों और घोड़ों को सजा कर अपने समान बयस्क रघुवंशीकुमारोंवा अन्य रईसों के कुमारों को साजकर मृगया खेलने के बहाने से जाते हैं और श्रीराजनंदनजू श्रीसरयूतट के बन में मृगया के योग्य हरे रंग के बस्त्रोंको धारण किये हैं और मृगयाके खेलमें आपको कुछ बिलम्ब होजाता है तब प्राणधन कान्तवर नायकशिरोमणि श्रीराजनंदनजू नहीं आते हैं तब अति कोमल स्वभावा श्रीराजकिशोरीजू प्राणबल्लभजूके विरहमें शोकाक्रांत हो जातीहैं बिरहदशाकी बृद्धि होजातीहै उस समय अनेक तरह के कौतुकों को सज कर श्रीकिशोरीजूके चित्त की शांत्वनाकेलिये कल्पनाकरती हैं पर निरतिशय प्रेमवती श्रीराजकिशोरीजू प्राणबल्लभजू के बिना कैसे प्रसन्न हो सकती हैं तब आप प्राणनाथजू की विनोद लीलामय प्रतिमा को अपने हस्त में लेकर उन्हें दिखलाती हैं श्रीराजकिशोरीजू अपने सहित प्राणबल्लभजूके लीलामय चित्रों को देखकर प्रसन्न होती हैं और अपने प्रियपरिकरों को नाना तरहके वस्तुवों कोबखशीश

में देती हैं ऐसी श्रीचारुशीलादेवी को मैं भजती हूँ ॥ ८ ॥

भव्यं भावय हे सखीति वचनं रामे स्मरावेशिते कोटीन्दूर्जितभानने वदति या भव्यं सुखं ते सखे इत्युक्त्या वरमंदिरे जनकजासामीप्यमासा-दिता दम्पत्योश्च समागमं कृतवती तां चारुशी-लाम्भजे ॥ ९ ॥

किसी समय प्रिय सखीगणों के सहित श्रीमिथिलेशकिशोरी जू बिनोदावेश वश कुंजान्तरों में प्रियस्नेह की परीक्षार्थ प्रियतम के निकट आने में कुछ बिलम्ब करती हैं उस समय श्रीरघुनन्दनजू प्रेमावेशवश कोटिचन्द्रलज्जित करने वाले मुख को अति उदासी-न कर श्रीसर्वेश्वरीजूसे कहते हैं कि हेसखि ? हमारीप्रियाजू को मिला कर हमारे आनंद की वृद्धिरूप कल्याण को करने वाली आप ही हो अतः प्रियाजू को हमें मिलाइये इस प्रकार बचन सुन कर हे सखे प्रिय नाथ आपका तो भव्य सदा ही हैं क्योंकि श्रुति तथा मुनिवर आपको आनंद स्वरूप बतलाते हैं तब आपके आनंद में त्रुटि कैसे कही जाय इस तरह व्यंग वचन कह कर मंदिर में श्रीजनकजाजू के समीप जाती हैं और प्रियतम के बिरह आतुरता को जनाकर उन्हें ले आती हैं और दोनों प्रिया प्रीतम का परस्पर समागम करा देती हैं ऐसी श्रीचारुशीलादेवीजी को मैं भजती हूँ९

भाव—इस तरह आखेट खेलकर जब राजनन्दनजू प्रियाजू के प्रेमावेश में भरे हुए बड़ी त्वरा के साथ महलमें पधारते हैं तब आपके आगमन को जानकर श्रीराजकिशोरीजू अपने नित्य स्थल को छोड़कर किसी दूसरे महल में जाकर छिप जाती हैं अभिप्राय यह है कि जैसे श्रीराजकिशोरजू ने अपने समय को बिता कर हमें विरह से तरसाया है वैसे ही हम भी समय पर उन्हें न मिलेंगी इस अभिप्राय से छिप रहती हैं रसिकवर श्रीराजनंदनजू महल में आते हैं प्रियाजू को पर्य्यंङ्क पर न देखकर एक साथ प्रेम से विह्वल हो जाते हैं क्योंकि स्मर के आवेश वश आपका बुद्धि बल उस समय कुछ नहीं चलता है तब श्रीसर्वेश्वरीजू से प्रार्थना करते हैं कि हे सखि अब इस समय में प्राणप्रियाजू को मनाकर ले आवों हमारे भव्य अर्थात् मंगल की भावना यानी योजना आप करो कोटि चन्द्र के जीतनेवाले मुख से आज दैन्यभाव से इस तरह प्रार्थना करते देखकर सर्वेश्वरीजू उत्तर देती हैं कि हे श्रीराजेन्द्रनन्दनजू सब वेद आपको आनंदरूप पुकारते हैं तब फिर आपको दूसरे से आनंद की क्या अपेक्षा है आप तो स्वयं सुखरूप हैं। यदि आपको दूसरे से ही सुख चाहना है तब आप आनंद-रूप कैसे हैं आनंदरूप तो हमारी स्वामिनी श्रीराजकिशोरीजू हैं जिनके बिना आप सुख नहीं पा रहे हैं ऐसे चातुर्य्यमय वचन को सुनकर आप कहते हैं कि आप यह वचन की रचना न कीजिए शीघ्र जाकर हमारी प्राणेश्वरीजू को ले आकर हमें सुखी कीजिये आप उत्तर देती हैं कि अच्छा बहुत ठीक अब हम समझ चुकीं कि आनन्दरूपा ब्रह्म से ब्रह्म की शक्ति ही है ऐसा कहकर श्रेष्ठ

मोतियों के महल में श्रीमिथिलेशकिशोरीजू के पास आप जाती हैं और अपनी वचनों की चातुरी से कि हमने आज आनन्दरूप आनन्द की सीमा परब्रह्मरूप जिन्हें वेद पुकारते है उन्हें आपके प्रेम में अति विह्वल देखकर यह निश्चय कर लिया जो कि ऋषि लोगों ने यह लिखा है कि "शक्ति बिना च रामोपि किंचित कर्तुं न शक्नोति" अर्थात शक्ति के बिना श्रीरामजी कुछ भी नहीं कर सकते हैं इस वचन को ठीक समझ लिया क्योंकि हमने उन्हें बहुत समझाया पर वे आपके बिना अति विह्वल हैं उनकी दशा कहने के ही योग्य नहीं है आप सुनकर अपनी दशा को भी कोमल स्वभाव वश न सम्हार सकेंगी। अतः वे अब अपने अपराध को क्षमा कराते हैं अब उन्हें माफी दीजिए चलकर उन्हें सुखी कीजिए। वस्तुतः आप और वे एक ही हैं हम सब परिकरों को दोनों के सुख में ही सुख है इत्यादि से उन्हें प्रसन्न करलेआती हैं मिलाती हैं इस तरह दिव्यदम्पति श्रीसीतारामजू के समागमका करानेवाली श्रीचारुशीलादेवीजी को मैं भजती हूँ ॥ ९ ॥

भृङ्गैराकुलकानने द्रुमचयेसम्पत्तिसन्धानके पद्मा-
नोमकरन्दसञ्चितसुखे वाते परागाञ्चिते ॥
खेलन्ती जनकात्मजा निजपतिं संश्लिष्य कंठे
भुजं तस्यारोप्य सुमेदुगङ्गविपुलामानन्दसिन्धु
प्लुताम् ॥ १० ॥

मधुसे मतवाले भृङ्गराजसमूहों से पूर्ण शुभवाटिका में जहाँ वृत्तों के समूहों में पत्र पुष्पादिके सम्पत्ति से दिव्यदम्पति का अनुराग उमगरहाहैं खिले हुये अनेक जाति के कमलों के मकरंद पूर्ण सुखमय सोहावन पवन के चल ने से पराग के झकोरे शोभित हो सुख बढ़ा रहे हैं ऐसे दिव्यनिकुञ्ज में श्रीमिथिलाधिपराजनंन्दिनीजी लावरायसौन्दर्य्यसागर अपने प्रीतम से संश्लिष्ट हो प्राणपति के कंठ में अपनी भुजवल्ली को आरोपण कर नील पीत रंग दोनों विपुल आनन्द सिन्धु में मग्न हैं ॥ १०॥

भाव—श्रीअशोकवाटिका प्रभृति अंतरंग क्रीड़ा कानन जो फूले हुये वृत्तों की लतावों से पूर्ण हैं जिन में इस लोक को कहना ही क्या ब्रह्मलोक तक के भ्रमर गण आमोद वश लुब्ध हुये गुंजार कर रहे हैं दाड़िम आम्र अंजीर आदि मधुर फलों के वृत्तों की सम्पत्ति से भी पूर्ण हैं सब सम्पत्तिका संधान जिनमें हो रहा है और मणियों से सोपान बधे हुये निर्मल जल से पूर्ण सरोवर कुंड जिन में यथा विभाग बने हैं उन में फूले हुये कमलों के मकरंद से संचित सुखमय त्रिविधि बयारि की बहार जिस में चित्त को लुभाय रही है पुष्पों के पराग सब ओर से एकत्रित होकर दिव्य दम्पति की सेवा में सुख ले रहे हैं ऐसे मनोहर सब सौन्दर्य्यसम्पन्न वाटिकावों में श्रीजनकराजकिशोरीजू अपने प्राणपति से संश्लिष्ट होकर कंठ में गलबाहीं को दिये क्रीड़ा कर रही हैं उस समय जो श्रीसर्वेश्वरीजू परस्पर के प्रेमको बढ़ाते हुये परस्पर गलबाहीं देकर बिराजने की प्रर्थना करती हैं और परस्पर के प्रेम को देखकर कटाक्ष से मंदमुसक्यान-

युक्त मुख मण्डल से आनंद में पूर्ण होकर सब अंग प्रफुल्लित हुये बिपुल हो रहे हैं अर्थात् अंगों में इतना आनंद का हुलास है कि जिससे सब अंग बिस्तीर्णता को धारण कर बहु रूप से प्रतीत होरहे हैं ऐसे आनंद समुद्र में डूबी हुई श्रीचारुशीलादेवीजू को मै भजती हूँ॥ १०॥

दासीभिः परिवारिता शशिमुखी संसेवते या मुदा
गानोत्तानविधानवाद्यनिचये रागासुसज्जीकृता॥
रत्यन्ते रससंप्लुते सुखमयं पर्य्यङ्कमास्थाप्य या
दम्पत्योः परिशीलनं कृतवती तां चारुशीला-
म्भजे॥ ११॥

ऐसी दशा में समस्त अपनी दासीगणों से युक्त जो आनंद में भरी गान केउत्तानतरंग बिधान तथा वाद्य कौशल समूहों से और अनुरागसहित सब सामग्री से दिब्यदम्पति का सेवन करती हैं तथा अंतरंग क्रीड़ा में रस से भीजे हुये सुखमय पर्य्यङ्क पर प्रिया प्रीतम दिब्यदम्पतिको स्थापित कर एकान्त की सेवा करती हैं ऐसी श्रीचारुशीलाजू को मैं भजती हूँ॥ ११॥

भाव—किसी समय में अपने प्रिय परिकर गणो को आज्ञा देकर बीणा, सितार, मृदंग, मुरज, मुर्छल प्रभृति सुरीले वाद्यों को लेकर दिब्यदम्पति की सेवा में आप उपस्थित होती हैं सेव

सुख से चंद्रमा को भी लज्जित करने वाले मुख से प्रसन्न होकर, आनंद में भरी हुई अपने सेव्य, सर्वस्वभूत श्रीस्वामिनी श्रीस्वामी जू की सेवा कर रही हैं परिकरगण भी गान के तरंगों का मानो उत्तान (उन्नत) वितान तना है अर्थात गान वाद्यों का एकस्वर में मिलकर आकाश में मानों बितान तना है इस तरह के विधान से वाद्य समूहों से रागतान में अतिशय प्रवीणा, सावधान होकर सेवा में तत्पर रहती हैं जब दिव्यदम्पति परस्पर के अंतरंग रस में मग्न होते हैं और परस्पर के दर्शन से अपने अपने अपनपौ को भूल जाते हैं तब उस समय में सुख पूर्वक स्वयं पर्यङ्क के पास-स्थित होकर दम्पति के चरणों की सेवा परिशीलन कर उन्हें सावधान करती हैं ऐसी श्रीचारुशीलादेवीजी को मैं भजतीहू॥११

वन्दे श्रीचारुशीलां शुभगगुणयुतां श्रीप्रियाभाव-भाजां श्यामां सौभाग्यमूलां युगलप्रियकृतां वीणपाणौ दधानाम्।आस्ये विन्यस्तचित्तांजित-विधुनिकरां केलिमाधुर्य्यवित्तां सौन्दर्य्याढ्यां शुभाङ्गां रतिशतविमलां तां परानन्दकन्दाम्॥१२॥

इति श्रीवृहद्ब्रह्मरामायणे महालक्ष्मीकृत श्रीचारुशीलास्तवः समाप्तः

सर्व शुभगुणयुक्ता, श्रीप्रियाजू के भावकी आप भाजन हैं सर्वसौभाग्यमूलभूता, नित्यकिशोरावस्था वाली, तथा दिव्य दम्पति युगल सरकारके प्रिय करने के वास्ते सदा समय समय पर वीणा को हस्त में लेकर दिव्य दम्पति के मुख चन्द्र में चित्त को स्थापित कर केलिमय दिव्य माधुर्य्यसम्पत्ति को बढाने वाली, अपने मुख चन्द्र से अनेक चन्द्रशोभा को लज्जित करने वाली, सौन्दर्य्य से पूर्ण शुभ अंग वाली, शतशः रतियों को लज्जित कर बिमल प्रकाश बढाने वाली, परानन्द की मूलभूता, श्रीचारुशीला देवीजी को मैं वन्दन करती हूं ॥ १२ ॥

भाव–इस तरह एकादश पद्यों से श्रीमहालक्ष्मी जी श्रीसर्वेश्वरी जी का वैभव वर्णन करती हुई सब का संग्रह उन्हें अपना सर्वस्व समझ कर प्रणाम किया अब बारह वें पद्य में दिखाती हैं कि मैं श्रीचारुशीलादेवीजू को नित्यही बन्दना करती हूं

वन्दे—यह पद बदि अभिवादन और स्तुति दो अर्थ वाले धातु से निष्पन्न होता है उसका तात्पर्य्य यह है कि सर्वेश्वरी श्रीचारुशीलादेवीजू की स्तुति करते हुए उनके चरणों को प्रणाम करती हूँ, जो शुभग गुणों से युक्त हैं वे गुण सौन्दर्य्य, चातुर्य्य, गाम्भीर्य्य, धैर्य्य आदि अनन्त हैं उन सब गुणों के पूर्ण होने का कारण यह है कि वे श्रीप्रियाजू की भाव भाजा हैं अर्थात इनके गुणों से प्रसन्न हुईं श्रीप्रियाजू अन्य यूथेश्वरियों की अपेक्षा इनमें अधिक भाव प्रेम अपनपौ रखती हैं वा श्रीसर्वेश्वरीजू के हृदय में श्रीप्रियाजू में निरतिशय भाव है इसीका फल है कि वे सब गुणों

से पूर्ण हैं जिससे दिव्यदम्पति इनका आदर विशेष रखते हैं। पुनः श्यामा हैं अर्थात् सदा ही एक रस षोड़शवार्षिकी प्रतीत होती हैं यह अवस्था अतिमनोहर तथा क्रीड़ा के सौन्दर्य्य में तथा योग्यता में पूर्ण मानी गई है और सौभाग्य की तो आप मूल ही हैं अर्थात् जो भाग्यशाली इनके चरणों में प्रेम करते हैं और इनके अनुकूल प्रेयसी भाव को सर्वस्व समझ कर श्रीसर्वेश्वरीजू का आश्रय लेते हैं वे सर्वसौभाग्य के पात्र बनते हैं। पुनः युग्लसरकार के प्रिय करनेवाली हैं तात्पर्य्य यह कि आप इस तरह से दाक्षिण्य भाव को रखकर दम्पति की सेवा करती हैं कि जिससे नायकवर प्राणनाथजू यही समझते हैं कि ये हमारे ही पक्ष को ज्यादा रखती हैं इसी तरह सर्वगुणशीला सर्वेश्वरी श्रीमिथिलेशकिशोरीजू भी यही समझती हैं कि सब यूथेश्वरियों की अपेक्षा श्रीचारुशीलादेवीजू हमारे अनुकूल कार्य्यों को करती हुईं हमारा ही पक्ष प्रधान मानती हैं जब कभी दिव्यदम्पति पर्य्यङ्क पर विराजते हैं और सब परिकर अपने २ साज को लेकर सेवामें उपस्थित होते हैं उस समय आप अपने मनोहर करकंज में वीणा को लेकर दिव्यदम्पति के मुखचन्द्र में अपने चित्त को स्थापित कर सेवन करती हैं उस समय अनंत चन्द्रमा के गणों की शोभा श्रीप्रियाप्रीतम दम्पति के मुखचन्द्रकी शोभा के किंचित् भाग को भी नहीं पा सकती है ऐसा मन में समझ कर आनंद में पूर्ण हुई दोनों के गुणों रूपों को वर्णन करते हुये गान करती हैं क्यों कि केलि माधुर्य्य ही आपका सर्वस्व वित्त है अर्थात् दिव्यदम्पति

की अनुपम रसमयी केलि और उसका माधुर्य्य इसी को आप अपना सर्वस्ववित्त (धन) समझती हैं ।

भाव—जैसे लोग धन से तृप्त नहीं होतेहैं वैसेही श्रीसर्वेश्वरीजू युगल के केलि माधुर्य्य को चाहती हैं वित्तकेलिये प्रायः बहुत उपाय करते हैं वैसेही आप दिव्य दम्पति के लिये केलि माधुर्य्य से तृप्ति को न पाती हुई सदा उसकी वृद्धि का प्रयत्न अपने चातुर्य्य से किया करती हैं और आप में चातुर्य्यभी ऐसाही अद्भुत है जो युगल के केलि माधुर्य्य को प्रवाह रूपेण सदा बहाया करती है । सौन्दर्य्याढ्याः—समस्त अलौकिक सौन्दर्य्य की सीमा श्रीसर्वेश्वरीजूहैं जिनके सौन्दर्य्य में लुब्ध होकर नायकवर श्रीराजकिशोरजू अति लालायित और प्रसन्न रहते हैं क्योंकि अंग २ में श्रीसर्वेश्वरीजू असंख्य रति आदि कामिनियों से अति विमल हैं अर्थात अनन्त रति आदि सौन्दर्य्यशालिनी सब देव बधूटी आपके एक एक अंग में सहस्रशः नेवछावर होती हैं ऐसी परमा अनन्दरूपा आनन्द की मूल भूता श्रीचारुशीला देवीजू का मैं नमस्कार करतो हूँ ॥ १२ ॥

इति श्रीबृहद्ब्रह्मरामायणे महालक्ष्मीकृतः श्रीसर्वेश्वरि श्रीचारुशीला स्तवः

समाप्तः

श्रीपार्वत्युवाच

ब्रूहि भो कृपया स्वामिन्नामधेयानि चाद्य मे ॥
जानक्या अष्टमुख्यानां सखीनां करुणानिधे ॥ १ ॥

जननीजनकानां च नामानि शुभदानि च ॥
कथयस्व महादेव ज्ञात्वा मामनुगामिनीम् ॥२॥

श्रीपार्वतीजी प्रश्न करती हैं—हे स्वामिन् श्रीजनकराजकिशोरीजू की अष्टप्रधानयूथेश्वरियों के नाम कृपा करके कहिये और हे करुणानिधे ? ॥ १ ॥

इन सखियों के माता पिताके, शुभदेने वाले नामोंकोभी अपनी अनुगामिनी जानकर मुझसे कहिये ॥२॥

जन्मर्क्षमासपक्षौ च योगलग्नानि कथ्यताम् ॥
पुनर्जन्मव्रतारम्भस्तासां तत्फलमुत्तमम् ॥३॥

तथा उनके जन्म नक्षत्र, महीना, पक्ष, योग, लग्न, पुनः इन के जन्म केव्रत, कैसे आरम्भकिये जावें उसव्रतका उत्तमफल क्या हैं हे महादेवजी यहभी कहिये ॥ ३ ॥

श्रीशिव उवाच

प्रसन्नोऽस्मि महादेवि लोकानां हितकारकम्
अशेषेण प्रवक्ष्यामि श्रूयतां सावधानतः॥४॥

श्रीशिवजी बोले कि हे महादेबि मैं अति प्रसन्न हूं अतः सर्वलोकहित कारक आपके इस प्रश्न का उत्तर सम्पूर्ण मैं दूँगा सावधान होकर आपसुनिये ॥ ४ ॥

नाम्ना तु शत्रुजिद्वीरो निमिवंशयो महाबलः ॥
तस्य भार्य्या चन्द्रकान्तिः पतिसेवाविचक्षणा ॥५॥

एक निमिवंश में महाबलवान् श्रीशत्रुजित नाम से प्रसिद्ध महाराज हुये उन्हीं की पति सेवा प्रवीणा श्रीचन्द्रकान्तिजी भार्य्या रहीं ॥ ५ ॥

तस्या जाता चारुशीला जानकीप्राणवल्लभा ॥
वैशाखे चोत्तमे मासे पूर्णिमायां शुभग्रहे ॥६॥

इन्हीं कीकन्या श्रीजनकात्मजाजू की अयिशयप्रिया श्रीचारुशीलाजू सर्वोत्तम मास, वैशाख के पूर्णिमा के दिन शुभ, ग्रह, योग में आविर्भाव भई ॥ ६ ॥

चित्रायां चन्द्रवारे चधनुर्लग्नेधनप्रदे ॥ ततो सेवा धनं प्राप्तं जानक्याः कमलाश्रयम् ॥७॥

चित्रा नक्षत्र चन्द्रवार धन के देने वाले धनुलग्नमें आविर्भावहोकर श्रीस्वामिनीजू की सेवा रूपी धन के लिये श्रीमहालक्ष्मी जीभी आपका आश्रयण करती हैं अर्थात् आपकी स्तुति करती हैं

निमिवंश्योयशश्शाली विदग्धा तस्यतु प्रिया ॥
तस्यांशुभदिने जाता लक्ष्मणा शुभलक्षणा ॥८॥

कृष्णाष्टम्यां ज्येष्ठमासे कुजवारे शुभग्रहे ॥ श्रवणे मेषलग्ने चसिद्धयोगे शुभप्रदे ॥ ९ ॥

इसी तरह निमिवंश में श्रीयशःशालिजी और उनकी पत्नी श्रीविदग्धाजी हुईं इनकी कन्या ज्येष्ठमास, कृष्णपक्ष, अष्टमीतिथि मंगलवार आदि मेषलग्न, श्रवणनक्षत्र, सिद्धिप्रद सिद्धयोग में शुभ लक्षणा श्रीलक्ष्मणाजी प्रगट हुईं ॥९॥

पुनश्चैकोमहाराजो निमिवंश्योऽरिमर्दनः ॥ तस्य भार्य्या च शुभदा अतीव पतिवल्लभा ॥१०॥

पुनः निमिवंश में महाराज श्रीअरिमर्दनजी उनकी अति प्रिया भार्य्या श्रीशुभदाजी अत्यन्त अपने प्राणवल्लभ की प्रिया रहीं ॥ १० ॥

आषाढ़े शुक्लपक्षे च नवम्यां सोमवासरे ॥ रेवत्यां सिंहलग्ने चशुभयोगे, शुभप्रदे ॥११॥
तस्यां शुभदिने जाता नाम्ना हेमा सुकन्यका ॥ सर्वविद्याविनीता चकलासु कुशला सखी ॥१२॥

इनके गर्भ से आषाढ़ महीना, शुक्लपक्ष, नवमी तिथि, सोमवार, रेवतीनक्षत्र, सिंहलग्न और शुभ देनेवाले शुभयोग में सर्व विद्या में प्रवीणा सब कला में कुशल श्रीमिथिलेशनन्दनीजू

की प्रियसखी श्रीहेमाजू का जन्म हुआ ॥ १२ ॥

तथा चैकोमहावीरोनिमिबंश्योरितापनः ॥
तस्य कांता सुवृत्ता च गुणरूपसमावृता ॥ १३ ॥

एवं निमिवंश के एक महावीर्य्यवान् महाराज अरितापनजू इस नाम से प्रसिद्ध हुए उनकी गुणरूपयुक्ता श्रीसुव्रताजी भार्य्या हुईं ॥ १३ ॥

तस्या क्षेमकरी जाता नाम्ना क्षेमा सुकन्यका ॥
गुणरूपसमायुक्ता जानकीप्राणवल्लभा ॥ १४ ॥

उन्हीं की कन्या सर्व जगत् की क्षेम करनेवाली गुण, रूप, संयुक्ता श्रीजानकीजू की प्राणवल्लभा सहचरी श्रीक्षेमाजू प्रगट हुईं ॥ १४ ॥

शुभे श्रावणके मासे शुक्लाष्टम्यां शुभग्रहे ॥
विशाखायां चन्द्रवारे मीन लग्ने शिवे तथा ॥ १५ ॥

इनके जन्म का समय श्रावण मास, शुक्लाष्टमी, विशाखा नक्षत्र चन्द्रवार कल्याणप्रद मीनलग्न है ॥ १५ ॥

पुनश्चैको महाराजो महीमंगलनामकः ॥
तस्य प्रिया मोदिनी च पंचम्यां रविवासरे ॥ १६ ॥

पूर्वभाद्रपदे भे च योगे सिद्धिशुभप्रिये ॥
मेषलग्ने वरारोहा साभवज्जानकीप्रिया ॥१७॥

पुनः निमिबंश ही में महीमंगल नाम के एक महाराज हुए तिनकी परमप्रिया भार्य्या श्रीमोदिनीजी रहीं। उनके गर्भ से भाद्रपद महीना, पञ्चमी तिथि, पूर्वाभाद्रपदनक्षत्र, रविवार, सिद्धि योग, मेषलग्न में श्रीविदेहराजकुमारीजू की अति प्रिया श्रीवरारोहा जी प्रगट हुई ॥ १६ ॥ १७ ॥

तथा चैको महाराजो निमिवंश्योवलाकरः ॥
तस्य भार्य्याशोभनांगी गुणरूपविभूषिता ॥१८॥

उसी प्रकार इसी वंश में श्रीवलाकर महाराज और गुणरूप भूषिता श्रीशोभनाङ्गीजी उनकी धर्मपत्नी हुईं ॥ १८ ॥

तस्यां जाता पद्मगंधा नाम्नानामार्थसंवृता ॥
पद्मपत्र समाकारा पद्मकेलिबिचक्षणा ॥१९॥

इन्हीं की कन्या कमलके पत्र के समान कोमल और सुगंधिविशिष्ट अंगवाली तथा कमलोंको लेकर दिव्यदम्पति के केलि में परम प्रवीणा श्री पद्मगंधाजी हुईं ॥ १९ ॥

आश्विने च सिते पक्षे सप्तम्यां गुरुवासरे ॥
पूर्वाभाद्रपदे भे च मीनलग्ने शुभग्रहे ॥२०॥

इन का जन्म समय आश्विन महीना, शुक्ल पक्ष सप्तमी तिथि गुरुवार पूर्वाभाद्रपद नक्षत्रमीन लग्न, माना गयाहै ॥ २० ॥

पुनश्चैको महाराजस्तेजः शाली महावलः ॥
तस्य प्रियाविशालाक्षी च विलक्षणगुणान्विता ॥२१॥

पुनः एक महावल वाले श्रीतेजश्शालीजी महाराज इसी निमिवंश में हुये जिनको विलक्षण गुणयुक्ता श्रीविशालाक्षीजी महारानी हुई ॥ २१ ॥

तस्यां सुलोचना नाम्ना जातापुत्री सुलक्षणा॥
गुणरूपसमायुक्ता जानकीप्रेमविह्वला ॥२२॥

इन ही के गर्भ से श्रीसुलोचनाजी प्रगट हुई जो सर्व लक्षण सम्पन्ना गुण रूप से युक्त तथा श्रीजनक किशोरीजू के प्रेम में विह्वल रहा करती हैं ॥ २२॥

कार्तिके शुक्लपक्षे च नवम्यां भौमवासरे ॥
रोहिण्यां देवलग्ने च साध्ययोगे शुभग्रहे ॥२३॥

इन का जन्म कार्तिक महीना शुक्लपक्ष, नवमी तिथि, भौम वार रोहिणी नक्षत्र, वृश्चिक लग्न, साध्ययोग, इन सब शुभग्रह में हुआ है ॥ २३ ॥

ततश्चैकोमहाराजो महावीर्य्योऽरितापनः ॥
तस्य भार्याविनीता सा नामार्थंगुणसंयुता ॥२४

तिस के बाद महावीर्य्य वाले एक महाराज अरितापन नाम से विख्यात हुये जिनकी भार्या नामार्थ गुण सम्पन्न श्रीविनताजी हुई ॥ २४ ॥

तस्यां श्रीशुभगा जाता सर्वसौभाग्यसंयुता ॥
सर्वसद्गुणसम्पन्ना सर्वविद्याविशारदा ॥२५॥

तिनहीं की कन्या सर्वविद्या में प्रवीणा सर्व सद्गुण सम्पन्ना एवं सर्व सौभाग्ययुक्ता श्रीशुभगाजी हुई ॥ २५ ॥

मार्गशीर्षे सिते पक्षे नवम्यां चन्द्रवासरे ॥
पुष्ये भे वृषलग्ने च साध्ययोगे द्वि त्रिग्रहे ॥२६॥

इन का जन्म समय अगहन महीना, शुक्लपक्ष, नवमी तिथि, चन्द्रवार, पुष्य नक्षत्र, साध्ययोग द्विस्वभावलग्न माना गया है २६

अष्टाविति सखीमुख्या जानक्याः करुणानिधेः ॥
एतासामपि सर्वासां चारुशीला महत्तमा ॥२७॥

करुणा वती श्रीमिथिलेश किशोरीजू की यही आठ मुख्य सखी हैं अर्थात् यूथेश्वरी हैं इन सबों में प्रधान महत्व शालिनी

श्रीचारुशीलांजी हैं ॥ २७ ॥

जन्मानि तु मया तासां कथितानि समग्रतः ॥
तिथिवारादि लग्नानि सर्वेषां हितकाम्यया ॥२८॥

हे देवि इन आठ यूथेश्वरियों के नाम जन्म तिथि वार लग्न सब के हित के लिये मैंने तुम से कहे है ॥ २८ ॥

व्रतं चाप्युत्सवं चैव तासां जन्मदिने शुभे ॥
कुर्वन्तियेमहाभागा शृणु तत्फलमुत्तमम् ॥२६॥

इन के शुभ जन्मदिन में जो महाभाग्य वाले पुरुष व्रत उत्सव को करते हैं उसका भी उत्तम फल सुनो ॥२९ ॥

आसां व्रतप्रभावेण जानकीनिकटं व्रजेत् ॥
मनोभिलाषमासाद्य यथा भावेस्थितःपरम् ॥३०॥

इनसबों के व्रत के प्रभाव से श्रीविदेहराजकुमारीजू के निकट सेवा के अधिकार को प्राप्त कर सकेगा और अपने सब मनोरथों को पाकर दुर्लभ भाव में स्थित सहज में होजायगा॥३०

भार्य्याभावेन श्रीरामं प्राप्तुमिच्छति यो नरः ॥
महास्नेहो स्थितेनैतत्स प्रीत्या व्रतमाचरेत् ॥३१।

जो पुरुष अति स्नेह पूर्वक भार्य्या भावसे श्रीरामजीकी

प्राप्ति चाहे उस को प्रीति सहित इन यूथेश्वरियों के व्रतों को करना चाहिये ॥ ३१ ॥

एकेन जन्मना देवि सगच्छे द्राघवं पतिम् ॥
सततं रमते कामं नित्ये धाम्निपरात्परे ॥३२॥

हे देवि वह एकही जन्न के साधन से रघुकुलोद्भव श्रीराम जी को परम सुखद पति पाकर परात्पर नित्यधाम में प्रभु के साथ निरन्तर क्रीड़ा सुख का भागी होता है ॥ ३२ ॥

लोकेस्मिन् रमते रामे पत्नीभावेन यो नरः ॥
नारी वा सततं प्रीत्या भावनायां विचक्षणा॥३३॥

इस लोक में पुरुष हो वा नारी हो भावना में प्रवीण पत्नी भाव से जो श्रीरामजी में प्रेम करते हैं उन्हैं यह व्रत करना आवश्यक है ॥ ३३॥

व्रताचारं विनैवासां पूजनाराधनं विना ॥
तन्नप्राप्नोति देवेशि सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम्॥३४॥

हे देवेशि इन सवों के व्रताचार तथा पूजन आरधन के बिना श्रीरामजी के साथ नित्य दिव्यक्रीड़ामयी लीला के सुख का अधिकार नही हो सकता यह मैं सत्य कहता हूँ ॥ ३४ ॥

अनन्तगणमुख्यानां सखीनां शृणु पार्वति ॥
अष्टाविति महामुख्यो महालक्ष्म्यादिवन्दिता
॥३५॥

हे पार्वती श्रीसीताराम महाराज के सखी गण अनन्त हैं इन सवों में बहुत सी मुख्य सखी हैं तिन में भी आठ महामुख्य सखी हैं जो महालक्ष्मी आदि शक्तियों से वन्दिता हैं ॥३५॥

अष्टासामपि संपूज्या चारुशीला सुवल्लभा ॥
तां समाश्रित्य जीवोऽयं प्राप्नोति जानकीवरम्
॥३६॥

इन आठ यूथेश्वरियों में भी श्रीचारुशीलाजी पूज्यतमा हैं क्योंकि ये दिव्य दम्पति को अत्यन्त प्रिय हैं इन्हीं का आश्रय लेनेसे यह जीव श्रीजानकी वल्लभजू को सहज में प्राप्तकर सकता है ॥ ३६ ॥

आसां जन्मदिने देविनाचरेद्व्रतमुत्सवम् ॥
यथाविधिसपापिष्ठो निरये व्रजति ध्रुवम् ।३७॥

इन सवों के जन्म के दिन व्रत और उत्सव यथा विधिजो नहीं करता है वह पापिष्ठ नरकादि क्लेशों को अवश्य प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥

स्वयं यदि नशक्तोऽस्ति कारयेदब्राह्मणैस्तदा ॥
भ्रातृपूजादिभिश्चैवा ऽथवाबहुदिनेस्वयम् ॥ ३८ ॥

किसी कारण से व्रत करने में समर्थ न हो तो अपने बदले ब्राह्मण से व्रत कराकर अपने सम्बन्धियों के द्वारा पूजन इत्यादि करा लेना वा स्वयं करना उचित है ॥ ३८ ॥

व्रतस्य चोत्तरदिने ब्राह्मणान्वैष्णवांस्तथा ॥
पूजयेत्सर्वविधिना भोजनैर्दक्षिणादिभिः ॥ ३९ ॥

व्रत के दूसरे दिन ब्राह्मण वैष्णवों को दक्षिणादि से पूजित कर विधि पूर्वक भोजन कराना चाहिए ॥ ३९ ॥

ब्राह्मणाय ततः सर्वं मंडपं च समूर्तिकम् ॥
सघटं सान्नकं देवि श्रद्धया च समर्पयेत् ॥ ४० ॥

पूजन के बाद जिस ब्राह्मण को आचार्य्यरूपसे वर्ण किया है उन्हें मूर्ति के सहित घट अन्न आदि सामग्री सहित श्रद्धा से समर्पण कर देना चाहिये ॥ ४० ॥

एवं यः कुरुते देवि सखीनां व्रतमुत्तमम् ॥
चारुशीलादिमुख्यानां मैथिली तं प्रसीदति ॥ ४१ ॥

हे देवि इस प्रकार श्रीचारुशीलादि मुख्य यूथेश्वरियों के

ब्रत उत्सव को जो करता है उसके ऊपर श्रीमैथिलीजी प्रसन्न होती हैं और उनके प्रसन्न होने से लौकिक, पारलौकिक सब सुख प्राप्त होते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ४१ ॥

इति श्रीअगस्त्यसंहितायां उमामहेश्वर सम्बादे श्रीचारुशीलासर्बेश्वरिस्तोत्रे श्रीजानकी अष्टसखीनां समातृपितृक वार लग्न तिथि जन्मदिवस कथनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः। भाषाटीका श्री स्वामी पण्डित प्रवर श्री १०८ श्रीरामवल्लभाशरणजी महाराज श्री जानकीघाट श्रीअयोध्या मध्य श्रीमज्जानकीजीवनभवनस्थ ललित लडैतीलालकुंज मधुकरस्थान निवासीजी महाराज कृता समाप्ता।

समाप्त

पुस्तकप्राप्तिस्थानम्—

महान्त श्रीसियाशरणजी महाराज,

श्रीवैदेहीवल्लभकुञ्ज (श्रीबावनजी का मन्दिर)

स्वर्गद्वार, अयोध्या।